मुखबंध

यह बात ठीक है कि प्रत्येक साहित्य के शैशव में कहानियां और कविताएं ही रहा करती हैं, परन्तु युवा हो जाने पर भी बाल-स्वभाव बनाए रखना कभी हितकर नहीं हो सकता। कहानी, नाटक, कविता आदि ललित साहित्य चटपटी चटनी के समान है। इसके अधिक सेवन से ठोस जीवनोपयोगी विषयों के अध्ययन की शक्ति नष्ट हो जाती है; गम्भीर बातों को पढ़ने और विचारने को मन ही नहीं होता। इस प्रकार का साहित्य अधिकतर मनोरञ्जन का ही काम देता है या थोड़ी बहुत साक्षरता उत्पन्न करने में सहायक हो सकता है। विद्वान् लोग साहित्य की परिभाषा चाहे कुछ ही करें, परन्तु मैं तो यही समझता हूं कि जो साहित्य देश एवं जाति को उन्नत करने और मनुष्य को जीवन-संग्राम में सफल बनाने में सहायक नहीं हो सकता वह व्यर्थ है। आज के युग में जीवन-संग्राम इतना कठिन हो गया है, संसार के विभिन्न राष्ट्र ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल और राजनीति में इतने प्रबल वेग से आगे बढ़ रहे हैं कि जब तक भारत भी उनके समान ही द्रुतगति से नहीं बढ़ेगा तब तक वह दूसरों का दास बना रहने से न बच सकेगा।

इसी दृष्टि से विचार करने पर प्रस्तुत पुस्तक का वास्तविक महत्व समझ में आसकेगा। यह पुस्तक उपन्यास या नाटक नहीं। इस लिए जो लोग केवल मनोरञ्जन के लिए या समय बिताने के लिए पुस्तकें पढ़ा करते हैं, उन्हें इस पुस्तक को हाथ नहीं लगाना चाहिए। उन्हें इसे देख कर घोर निराशा होगी। पर हां, जो लोग आत्मोन्नति के इच्छुक हैं, जो जीवन-संग्राम में विजयी होना चाहते हैं, जो संसार को सुख-धाम बनाना चाहते हैं, उन्हें इस पुस्तक का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। इसके पाठ से उन्हें अवश्य लाभ होगा।

जैसा कि विद्वान् लेखक ने स्वयं ही स्वीकार किया है, यह पुस्तक एक

अंग्रेज़ी पुस्तक का मर्मानुवाद है। परन्तु अनुवाद होने से इसका महत्त्व कुछ कम नहीं होजाता। जो लोग अनुवाद का नाम सुनकर नाक-भौं चढ़ाया करते हैं, वे महात्मा इमर्सन के निम्नलिखित शब्दों पर विचार करें। वे कहते हैं—"मुझे सभी उत्तम पुस्तकों के भाषान्तर पढ़ने में कोई सङ्कोच नहीं होता। किसी पुस्तक में वस्तुतः जो कुछ सर्वोत्तम है—कोई भी सच्ची अन्तर्दृष्टि या उदार मानव-विचार—उसका अनुवाद हो सकता है। जिस भी लैटिन, ग्रीक, जर्मन, इटालियन, यहां तक कि फ्रैञ्च पुस्तक का भी अच्छा अंग्रेज़ी भाषान्तर मुझे मिल सकता है, मैं उसे मूल भाषा में बहुत कम पढ़ता हूं। मैं महान् इङ्गलिश भाषा का ही ऋणी बना रहना चाहता हूं। यह भाषा एक महासागर के सदृश है, जिस में भूमण्डल के सभी भागों से नदी नाले जल लाकर डालते हैं। अपनी मातृ-भाषा में पुस्तकों का अनुवाद मिलने पर भी मेरा उन सब पुस्तकों को उनकी मूल भाषाओं में पढ़ने की इच्छा करना वैसा ही है जैसा कि नाव को छोड़ कर नदी को तैर कर पार करने की इच्छा करना।"

अमर ग्रन्थ लिखना बहुत कठिन है। किसी विद्वान् का कथन है कि योरप और अमेरिका में यद्यपि प्रतिवर्ष सहस्रों पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, तो भी साहित्य में अपना स्थायी स्थान बनाने वाली पुस्तक उनमें कठिनता से एक आध ही होती है। योरपीय साहित्यिक दूसरी भाषाओं के उत्तमोत्तम ग्रन्थों के अनुवाद अपनी भाषा में छाप कर अपने देश-बन्धुओं को संसार के पुरोगामी विचार से परिचित रखते हैं। जर्मनी में, रूस में, फ्रान्स में, जहां भी ज्यों ही कोई उत्तम ग्रन्थ प्रकाशित होता है, उसका भाषान्तर तत्काल अंग्रेज़ी में निकल जाता है। इस प्रकार अंग्रेज़ी का साहित्य-भण्डार ग्रन्थ-रत्नों से बराबर भरता रहता है। इङ्गलैण्ड में आचार्य मैक्समूलर, श्री॰ कीथ, और श्री॰ आर्नल्ड जैसे अनेक ऐसे महापण्डित हो गए हैं, जिन्हों ने अपना सारा जीवन ही अनुवाद-कार्य में लगा

दिया था। उनके देश-बन्धुओं ने उनकी इस महती सेवा के लिए उनके प्रति कृतज्ञता का प्रकाश किया है।

अनुवादकर्ता सभ्यता की एक बहुमूल्य सेवा करता है। वह अतीत और वर्तमान के बीच, या एक विदेशी राष्ट्र और अपने लोगों के बीच एक पुल तैयार करने में सहायता देता है। अनुवाद द्वारा ही एक राष्ट्र के साहित्य, तत्त्वज्ञान और पदार्थ-विज्ञान से दूसरे सारे राष्ट्र लाभ उठा सकते हैं। अतीत काल में तीव्रबुद्धि वाले भाषाविदों ने अपने देशों में इस प्रकार नवीन धर्मों और राजनीतिक एवं वैज्ञानिक आन्दोलनों का प्रचार किया था। उन्हों ने अपने देश-बन्धुओं को धनाढ्य एवं प्रबुद्ध बनाया और संसार के प्रगतिशील आन्दोलनों में भाग लेने में समर्थ किया था। चीन में बुद्ध-धर्म का प्रवेश चीनी भाषा में बहुसंख्यक संस्कृत और पाली भाषा के अनुवादों द्वारा हुआ। कुमारजीव, युआनच्वाङ्ग और दूसरे कई लोगों ने इस सफल कार्य में वर्षों लगाए थे।

जिस प्रकार मधु-मक्खियां एक फूल से दूसरे फूल में पराग ले जाती हैं, उसी प्रकार नवीन युगों में संस्कृति को पुष्पित करने में अनुवाद-कर्ताओं का सदा बहुत बड़ा हाथ रहा है। वे संस्कृति के सुशिक्षित दूत हैं। इस लिए आवश्यकता है कि हिन्दी-जगत् अनुवाद-कार्य की महत्ता को समझे।

श्रीयुत 'पुरुषार्थी' जी ने यह अनुवाद तैयार करके हिन्दी-जगत् की अच्छी सेवा की है। उनकी भाषा सरल, सुन्दर और प्रवाहमयी है। उनका भाव समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। अनुवाद जैसे कठिन कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए मैं उन्हें बधाई देता हूं और आशा करता हूं कि भविष्य में वे और भी उत्तमोत्तम ग्रन्थों का हिन्दी में भाषान्तर कर अपने देश-बन्धुओं को लाभान्वित करते रहेंगे।

साहित्य-सदन,
कृष्णनगर, लाहौर

सन्तराम

विषय-सूची

विचार करने का स्वभाव बनाओ

स्वभाव को यदि हम सब से बडी शक्ति न भी मानें, तो भी उन महान् शक्तियों में, जिन का मनुष्य के शरीर पर अधिकार-पूर्वक शासन है, इसकी गणना अवश्य करनी होगी। यह कोई स्वतन्त्र शक्ति नहीं। इसका निर्माण मनुष्य स्वय करता है। परन्तु एक बार परिपक्व हो जाने पर यह पूर्णतया स्वतन्त्र हो जाती है और हमने अनेकों पुरुषों को यह कहते बहुधा सुना होगा कि भाई क्या करूं अमुक बुराई अब छोडे भी नहीं छूटती क्यो कि स्वभाव बन चुका है। अत स्वभाव बनाते समय सदा सावधान रहो।

प्रात काल के उठने से लेकर रात को सोने के समय तक हमारे दस मे से नौ कार्य इसी की कृपा से स्वत सिद्ध हो जाते हैं। कई लोग नियमित रूप से कार्य न करने के कारण स्वभाव बनाने मे सफल नही होते अत प्रति दिन वे लोग अपने समय का अधिकाश भाग उन बातों के बारे में निर्णय करने अथवा उन्हे करने के पश्चात् खेद करने मे ही व्यय कर देते हैं जब कि उन्हे करते समय उनके बारे मे ध्यान भी न आना चाहिये।

फल यह निकलता है कि वह मानसिक शक्ति जो अधिक महत्वपूर्ण कार्य के लिये सुरक्षित रखनी चाहिये, प्रति दिन के छोटे मोटे कामो मे ही खर्च कर दी जाती है।

जो मनुष्य अधिक महत्वपूर्ण कार्य को सपादन करने के लिये अपने मन को स्वतन्त्र नहीं रखता और छोटे मोटे कामों को अभ्यास द्वारा स्वभाव में परिणत करने का कष्ट नहीं उठाता, वही वस्तुत अस्थिर-चित्त मनुष्य होता है।

ऐसा पुरुष पृथ्वी पर सब से अधिक दु:ख भोगता है क्योंकि

वह अपने स्नायु-जाल को अपना मित्र बनाने के स्थान पर अपना शत्रु बना लेता है। मानसिक पक्ष में भी स्वभाव का कोई कम महत्व नहीं।

कोई भी मनुष्य, जिसके मस्तक में मस्तिष्क है, विचारे बिना नहीं रह सकता। परन्तु क्रियात्मक रूप में विचार करना—मस्तिष्क को नवीनता तथा विचार-शक्ति उत्पन्न करने के लिये विद्युत्-उत्पादक-यन्त्र की भान्ति प्रयोग में लाना—बहुत कम देखा जाता है।

परन्तु प्रत्येक पुरुष ऐसा कर सकता है यदि विवेकपूर्ण प्रयत्न किया जाय, यदि प्रतिदिन परिश्रमपूर्वक अभ्यास किया जाय या अन्य शब्दों में यदि विचार करने का स्वभाव बनाया जाय।

विचारशील पुरुष उस विवेक-शून्य पुरुष का सदैव स्वामी होता है जो केवल कार्य को करने की ही सामर्थ्य रखता है।

इस संसार में उन्नति के उच्चतम शिखर पर वे लोग ही पहुंच पाते हैं, जो कार्य को करने की क्षमता के साथ २ विचार भी कर सकते हैं।

कभी मत समझो कि स्वभाव बनाने का समय अब नहीं रहा! हां, यह बात अवश्य है कि ज्यों ज्यों आयु बढ़ती जाती है, स्वभाव बनाना अधिक कठिन होता जाता है।

अतः प्रारम्भ से ही विचार करने का स्वभाव बनाने के लिये निरंतर प्रयत्न करते रहो।

जो लोग विचार करने का स्वभाव बनाने के लिये प्रतिदिन थोड़ा बहुत अभ्यास करते रहते हैं, वे लोग कभी न कभी इस संसार द्वारा, जिसकी दृष्टि में अनियमित और असंयत कर्म का कोई मूल्य नहीं, अवश्य पुरस्कृत होते हैं।

प्रातःकाल उठने की समस्या

आरोग्यता की इच्छा करने वाले बुद्धिमान् पुरुष को प्रति दिन प्रातःकाल उठना चाहिये। प्रातःकाल के उठने का बड़ा माहात्म्य है। भगवान् सुश्रुताचार्य अनागत दुःखों से बचने के लिये प्रथम नियम यही लिखते हैं कि:—ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।' अर्थात् स्वस्थ मनुष्य को आयु की रक्षा के लिये ब्राह्म मुहूर्त्त में जाग उठना चाहिये।

परन्तु प्रातःकाल का उठना इतना सहज नहीं। यह जाड़े की ऋतु की एक ऐसी छोटी सी कठिनाई है, जिसका सामना हम सब को करना पड़ता है।

प्रातःकाल उठने के लिये हम जिस मात्रा में अपनी नाड़ी-शक्ति को व्यय कर देते हैं वह इस कार्य की उपयोगिता की अपेक्षा कहीं अधिक होती है।

यदि हम प्रातःकाल के उठने को अभ्यास द्वारा स्वभाव में बदल लें तो यह कठिनाई स्वयमेव दूर हो जाय।

निष्पक्ष भाव से देखा जाय तो प्रातःकाल का उठना उतना ही सहज है जितना कि बिछौने पर पड़े रहना। कठिनाई तो निश्चय करने और उस को क्रियात्मक रूप देने तक ही सीमित है।

और ये बातें इच्छा-शक्ति के अधीन हैं। जो मनुष्य अपने निश्चय के अनुसार कार्य नहीं कर सकता, समझ लो उसकी इच्छाशक्ति शक्ति-हीन है।

उसे चाहिये कि वह अपनी इच्छा-शक्ति को अभ्यास द्वारा पुष्ट करे तथा सुदृढ़ बनाये।

पाठक, यदि तुम प्रातःकाल उठने के समय कठिनाई अनुभव करते हो तो रात को सोने से कुछ समय पूर्व अपने आप को कहो

कि तुम उठ सकते हो।

ऊंचे स्वर से ऐसा कहना उपयोगी सिद्ध होता है; अतः दृढता-पूर्वक दोहराओ कि तुम उठ सकते हो। तुम्हारे कहने का ढंग ऐसा हो कि तुम्हारी उपचेतना को मान हो जाय कि वास्तव मे तुम्हारा अभिप्राय यही है।

उत्साह हीन होना काम नहीं देता।

तुम अपनी उपचेतना को आदेश देते हो। यदि यह आदेश भली भांति से दिया जायगा तो जागने पर तुम इस निश्चय को अपने मन मे सर्वोपरि पाओगे।

परन्तु यही निर्णायक क्षण होता है। यदि इस समय तुमने फिर सोचना आरम्भ कर दिया तो निश्चय जानो तुम्हारा सारा प्रयत्न निष्फल हो जायगा।

अतः अपनी तर्क-शक्ति के प्रबल हो उठने से पूर्व ही, शारीरिक पट्ठों को कार्य सिद्धि मे लगाने के लिये अपनी उपचेतना को उन्हें उत्तेजना देने दो।

प्रत्येक दिन रातको सोते समय अपने आप को जता कर कहो कि तुम उठ सकते हो। किसी भी रात को मत चूको।

प्रत्येक प्रातःकालीन सफलता दूसरे दिन के लिये इस काम को सुगम बना देगी। प्रत्येक प्रातः की हार इसे और भी दुस्साध्य बना देगी।

स्नायु-जाल मानसिक दुर्बलता को सहज ही क्षमा नहीं करता। अतः भूल कर भी अपनी दुर्बलता उस पर प्रकट न होने दो।

दिन रात का सतत अभ्यास, सच्चे प्रयास की सहायता से तत्काल के उठने का स्वभाव अवश्य स्थापित कर देगा।

जब ऐसा होगया तो यह कठिनाई स्वयमेव दूर हो जायगी।

समयपालक बनो !

मनोविज्ञान का एक बड़ा तथ्य यह है कि विचार सदा क्रियात्मक रूप धारण करने की ओर प्रवृत्त होते हैं।

वस्तुतः पुरुष मनोमय, मन वासनामय, और वासना कर्ममय है।

वेद मे भी लिखा है कि "यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति"। अर्थात् पुरुष जैसा मन में ध्यान करता है वैसा ही वाणी से बोलता है और शरीर से कर्म करता है।

अतः जो पुरुष बारम्बार यही सोचे कि वह रोगी है, निस्सन्देह रोगी हो जायेगा चाहे वह पूर्णतया स्वस्थ भी क्यों न हो।

मन शरीर पर जिस सीमा तक शासन कर सकता है उस का प्रायः कोई अन्त नहीं। मानसिक शक्तियों के आगे अन्य सभी शक्तियों को मुंह की खानी पड़ती है।

सुचारु रूप से परिपुष्ट मानसिक विचारों द्वारा हम समय उल्लंघन करने के बुरे स्वभाव को भी बदल सकते हैं।

यदि तुम उन लोगो मे से हो जो अनुभव करते हैं कि वे ठीक समय पर कार्य को आरम्भ नहीं कर सकते तो कुछ समय के लिए बैठ कर इस पर विचार करो।

तुम्हें शीघ्र ही विदित हो जायगा कि तुम्हारे समय को उल्लंघन करने का कारण अपने कर्तव्य के शुद्ध ज्ञान का अभाव है। अन्यथा कोई कारण नहीं कि तुम भी समय का पालन क्यों न करो।

तुम्हारा तो वस्तुत. दोहरा कर्तव्य है —एक तो अपने आत्म-सम्मान के प्रति, दूसरा अपने स्वामी के प्रति।

यदि एक बार तुम अपने कर्तव्य को भली भांति समझ कर उसे पूर्ण करने के लिये चित्त को एकाग्र कर लोगे तो निश्चय ही सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी।

समय का उल्लंघन अनियमित और अनिश्चित रूप से कार्य करने की रीति का ही फल है।

कर्तव्यबोध का अर्थ है अपने ध्येय को ध्यान में रखना। एक सेवक के लिये इसका अर्थ हो जाता है अपने तथा अपने स्वामी के साथ निष्कपट व्यवहार करना।

यदि तुम अपने ध्येय को विस्पष्ट कर लो तो तुम अनायास ही अपने छोटे मोटे दैनिक कामों को अपनी कार्य प्रणाली में स्थान देना आरम्भ कर दोगे।

अब तुम भी पहले की अपेक्षा आध घंटा पहले उठने का ध्यान रक्खोगे और मोटर या गाड़ी पकड़ने के लिये कुछ मिनट पहले चल दिया करोगे।

तुम धीरे २ अपने जीवन को सुव्यवस्थित करना आरम्भ कर दोगे और अनियमित काम करने वाले नहीं रहोगे।

अव्यवस्था ही समय-उल्लघन का एक मात्र कारण है। जो मनुष्य अपने जीवन की सम्यग् व्यवस्था करने का कष्ट नहीं उठाता, वह यथार्थ में अपवित्र आत्मा वाला है। फलत वह सदैव कलुषित जीवन व्यतीत करता है। कोई भी उसका आदर नहीं करता। वह अपनी दृष्टि में आप ही गिर जाता है।

चिन्ता मत करो !

भक्त कबीर का कथन है कि :—

चिन्ता तो हरि नाम की, और न चितवै दास ।
जो कुछ चितवे नाम बिनु, सोई काल की फास ॥

अर्थात् प्रभु का चिन्तन करने के अतिरिक्त पुरुष को अन्य किसी वस्तु की चिन्ता न करनी चाहिये। जो प्रभु के नाम बिना और किसी बात की चिन्ता करता है, वह शीघ्र ही मृत्यु का शिकार हो जाता है।

इसी लिए विद्वान लोग चिन्ता की प्राय. चिता से तुलना किया करते हैं; परन्तु चिन्ता चिता से कहीं बढ कर है । चिता तो मृत-शरीर को ही जलाती है परन्तु चिन्ता घुन के समान मानव शरीर को भीतर ही भीतर खोखला कर के किसी काम का नहीं छोड़ती और चिन्ता करने वाला मनुष्य जीते जी मृतक समान हो जाता है।

यह एक ऐसी पिशाचिनी है जो सारी सृष्टि को आप की दृष्टि मे अधकारमय बना सकती है। एकान्त मे बैठ कर चिन्ता मे निमग्न हो जाना मन को सक्षुब्ध तथ सकुचित कर देता है और संसर्ग मे आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का जीवन दु खमय बना देता है। अत चिन्ता सर्वथा त्याज्य है।

अगली बार जब तुम चिन्ता के कारण क्रोध के वशीभूत हो कर अपने सम्पर्क मे आने वाले जिस किसी पर क्रोध उतारने की चेष्टा करो, उस समय कुछ काल के लिये आराम से बैठ जाओ और इस बारे मे सोचो। ऐसा करना लाभप्रद प्रमाणित होगा।

मानव प्रकृति की यह एक विलक्षणता है कि अप्रिय विचार हृदय मे पैठ कर पूर्णतया विस्मृत हो जाने की चेष्टा करते हैं,

क्योंकि अप्रिय विचारों का बारम्बार स्मरण आना हमें तनिक भी रुचिकर नहीं होता।

परन्तु मन की गहराई में पैठ कर ये अप्रिय विचार एक प्रकार की शक्ति उत्पन्न करने में तल्लीन हो जाते हैं। वह शक्ति हमारे अन्य विचारों के साथ एक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लेती है और हमारे स्वभाव को बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के चिड़चिड़ा और क्रोधी बना देती है।

हम छोटी २ साधारण बातों पर ही अपने अड़ोस-पड़ोस के लोगों से रुष्ट हो जाते हैं और सामान्य भूलों को महा अनर्थ समझने लग जाते है।

अतएव बैठ जाओ और शांत-चित्त से विचार करो। शीघ्र ही तुम्हें अपने चिड़चिड़ेपन के वास्तविक स्रोत का पता चल जायगा।

परन्तु स्रोत का पता पा जाने पर उसको बोतल में बन्द रखने की चेष्टा भूल कर भी मत करो। बल्कि उसके बारे में जिस किसी के साथ खुल कर बात-चीत करो। अपने पति से, पत्नी से, मित्र से इस विषय पर वाद-विवाद करो। इस बात की तनिक भी चिन्ता न करो कि वे लोग कौन हैं। जब तक वे लोग तुम्हारी बात को ध्यानपूर्वक सुनें, बातें करते जाओ। इस प्रकार हृदय की भड़ास निकालने से तुम उस अनर्थकारी शक्ति को निर्मुक्त कर देते हो जो भीतर दबी रहने के कारण तुम्हें चिड़-चिड़ा और चिन्तातुर बना रही थी।

तुम्हारे अप्रिय विचार नष्ट हो जायंगे। अब उनका रंग तुम्हारे अन्य विचारों तथा क्रियाकलापों पर न चढ़ सकेगा। तुम शीघ्र ही अपने आप को अन्य पुरुष अनुभव करने लगोगे।

वह चिन्ता-जनित निराशा और अंधकार पूर्णतया विनष्ट हो जायंगे। तुम्हारा मुख हंसता हंसता सा दिखाई देने लगेगा और अड़ोस-पड़ोस के व्यक्ति तुम्हें देख कर तुम्हारे समक्ष आने में आगा-पीछा नहीं करेंगे।

बुद्धिमान् पुरुष किसी बात के लिये भी कदापि चिन्ता नहीं करते। जब वे दुःख अनुभव करते हैं, वे उसके बारे में मुक्त हृदय से वार्तालाप करते हैं—और पुनः स्वस्थ-चित्त हो जाते हैं।

कभी मत भूलो कि चिन्ता चिता से भी भयंकर है।

व्यायाम-शिक्षक

क्या हम दुःखी होने के कारण चिल्लाते हैं या चिल्लाने के कारण दुःखी होते हैं? क्या हम भयभीत होने के कारण भागने की चेष्टा करते हैं या भागने के कारण भयभीत हो जाते हैं?

ये इतने मूर्खतापूर्ण प्रश्न नहीं जितने हमें प्रतीत होते हैं। इन का आधार तो यह मूल प्रश्न है कि हमारी शारीरिक क्रिया पहले होती है अथवा हमारे मनोविकार की उत्पत्ति।

मनोविज्ञान के धुरंधर विद्वानों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई सम्मति तो यही है कि अधिकांश अवस्थाओं में हमारी शारीरिक क्रिया ही पहले प्रकट होती है। इसे प्रमाणित करना भी कोई कठिन बात नहीं।

घुटनों के बल बैठ जाओ, नत-मस्तक हो जाओ, दोनों हाथों को जोड़ लो, नेत्र मूंद लो—शीघ्र ही तुम अनुभव करोगे कि ईश्वरो-

पासना की धार्मिक भावना तुम पर अपना प्रभुत्व जमा रही है। तुम्हारी शारीरिक अवस्था अपने अनुकूल भावना को उपस्थित किये बिना न रहेगी।

अतः इस से कई महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रतिपादित किये जा सकते हैं।

सर्वप्रथम यह कि जिस प्रकार मन शरीर को प्रभावान्वित करने में समर्थ है उसी प्रकार शरीर भी मन पर अपना रंग जमा सकता है।

शारीरिक परिवर्तनों से मानसिक परिवर्तन हो सकते हैं। इस कारण यदि तुम खिन्नता अनुभव कर रहे हो तो उस समय दोनों हाथों से सिर को थाम कर, सिकुड़ कर कुर्सी पर बैठे रहना तुम्हारे लिए तनिक भी हितकारी नहीं।

ऐसे अवसर पर मुसकराना, शरीर के पट्ठों को हिलाना जुलाना अर्थात् पीठ को सीधा करना, कन्धों को फैलाना इत्यादि और किसी आनन्दवर्धक काम में जुट जाना ही हितकारी सिद्ध होता है।

खिन्नावस्था की शारीरिक स्थिति वस्तुतः मानसिक पक्ष का बाह्य स्वरूप है।

अतः उठो और जाकर जंगल में से कुछ लकड़ियां (ईंधन की सामग्री) काट लाओ, अपने उद्यान की भूमि को कुछ देर के लिये कुदाल से खोद देखो अथवा लम्बी सैर के लिए घरसे दूर निकल जाओ। परन्तु जो कुछ भी करो, मन लगा कर करो।

काम करते समय तुम्हारा मुख फूल के समान खिला हो, मस्तक पर चिन्ता की एक भी रेखा दिखाई न दे। ऐसे प्रतीत हो मानो तुम प्रकृति के प्राङ्गण में भोले शिशु के समान

क्रीड़ा कर रहे हो। काम करते समय साथ २ गाते जाओ और आनन्द भरी सीटियां बजाते जाओ। सच जानो, तुम्हारा मन शीघ्र ही तुम्हारे शरीर का अनुकरण करेगा और देखते ही देखते एक आनन्द-दायिनी भावना तुम्हारी उदासीन चित्तवृत्ति का स्थान ले लेगी।

तुम्हें विदित हो गया है कि मन और शरीर किस प्रकार एक दूसरे को प्रभावित कर सकते हैं; अब अपनी बुद्धि से काम लो।

अपने आप को एक व्यायाम-शिक्षक मान कर शरीर को अपने आदेशानुसार कार्य करने वाला बनाओ।

जब तुम्हारा मन खिन्नावस्था में हो अपने शरीर को आज्ञा दो कि वह उसे प्रसन्न करे। निस्संदेह वह अवश्य तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगा।

निष्क्रियता
अर्थात
पूर्ण आलस्य

अवकाश सभी के लिये आवश्यक है। जो सारा दिन शारीरिक पट्ठों से काम लेता है, जो मस्तिष्क का प्रयोग करता है, जो स्त्री गृहस्थी चलाती है, सभी को विश्राम की आवश्यकता है।

परन्तु विश्राम और आलस्य में तिल ताड़ का अन्तर है। आलस्य तो उस जंग के समान है जो लोहे को लग जाने पर लोहे को भी खा जाता है। अतः त्याज्य है।

विश्राम इस से बिलकुल भिन्न वस्तु है। विश्राम तो स्वगत

कार्य को बदल लेने से भी प्राप्त हो जाता है। इसे आलस्य की आवश्यकता नहीं।

हम जिसे 'विश्राम' कहते हैं वह प्रायः आलस्य के लिये ही बहाना होता है।

इस संसार में समय सब से अमूल्य वस्तु है। तभी तो अंगरेजी पढ़े लिखे लोग कहते हैं कि 'Time is money' अर्थात् समय धन है। परन्तु हमारे विचारानुसार तो धन में भी इस की बराबरी करने की सामर्थ्य नहीं क्यों कि 'Time once lost can never be recalled' समय नष्ट हो जाने पर पुनः लौट नहीं सकता जब कि धन एक बार नष्ट हो जाने पर पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

अतः एक मिनट भी व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिये।

कई लोग जब विश्राम के लिये बैठते हैं तो साथ २ कुछ न कुछ सोचते जाते हैं। पर कई केवल बैठना ही जानते हैं। वे जो केवल बैठे ही रहते हैं इस संसार में सदैव दुःख का उपभोग करते हैं क्योंकि उन का वह समय बैठे २ उन कल्पित अत्याचारों तथा छोटे मोटे कष्टों के बारे में चिन्ता करने मे ही व्यय हो जाता है।

इसी कारण 'निष्क्रियता' को द्व्यर्थक पद समझना चाहिए।

मानवयंत्र दिन रात एक शक्ति उत्पन्न करने मे लगा रहता है। यदि उस शक्ति को प्रयोग में न लायें तो वह कष्टकर प्रमाणित होती है।

शारीरिक कर्म करने वाले पुरुष के लिए सर्वोत्तम विश्राम मस्तिष्क का कोई काम है —जैसे पढ़ना। जो मनुष्य सारा दिन

मस्तिष्क से काम ले उसको सच्चा विश्राम किसी ऐसे काम में मिल सकेगा जिस में शारीरिक पट्ठों के व्यायाम की आवश्यकता हो—जैसे घोड़े की सवारी या बढ़ई इत्यादि का काम।

तौभी, प्रत्येक पुरुष निष्क्रियता अर्थात् पूर्ण आलस्य से भी कभी २ लाभ उठा सकता है, जब कि एक आध घंटे के लिये वह पूर्णतया निश्चेष्ट रहे।

परन्तु इस बारे में उसे सदा सतर्क रहना चाहिये कि ऐसा आलस्य कहीं स्वामी न बन बैठे। जहां तक हो सके इस का आश्रय न्यूनातिन्यून लिया जाय और वह भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए इसको एक निमित्त मानकर।

बचे हुए समय का सदैव सदुपयोग करना चाहिए। बुद्धिमान् पुरुष आलस्य से सदा बचे और एक कवि के कथनानुसार तुमको भी यही उचित है कि:—

आलस्य त्यागो, श्रम से न भागो।
यदि कीर्ति चाहो, प्रण को निबाहो॥

वास्तव में निरुद्यमी पुरुष सुख का अधिकारी नहीं होता। सुखी पुरुष वही है जो अपने स्नायुओं की शक्ति धारा को किसी न किसी नवीन वस्तु के निर्माण मे निमग्न रखता है।

निष्क्रियता या पूर्ण आलस्य एक औषधि है; औषधियों की स्वस्थ पुरुष को तनिक भी आवश्यकता नहीं।

रुचि को बढ़ाओ!

मानव-यन्त्र के भीतर शक्ति का एक बृहत् जलाशय बंद पड़ा है जो सदा इस बात की प्रतीक्षा में रहता है कि पुरुषार्थी पुरुष उसके बह निकलने का स्थान बना कर उस से काम लें।

ईश्वर ने पुरुष को सोचने तथा काम करने के लिये अनेकों शक्तियों से सम्पन्न किया है, परन्तु जब तक हम इन शक्तियों के अभ्यास के लिये प्रचुर सामग्री उपस्थित कर के उन्हें परिपुष्ट न करें तब तक वे उस यन्त्र के समान निष्प्रयोजन हैं जो संचालक शक्ति के बिना है।

जन्म सिद्ध विलक्षणता भी जब तक उद्योग द्वारा विकसित न कर ली जाय इतनी महत्त्वपूर्ण प्रमाणित नहीं होती।

मानव-प्रवृत्तियां कोमल पौधों के तुल्य हैं। पौधों को जल और वायु से वंचित रक्खो, वे मुर्झा कर नष्ट हो जायंगे; उन्हें उन का आहार देते रहो, वे बढ़ते २ विशाल और सुदृढ़ वृक्ष का रूप धारण कर लेंगे। इसी लिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी मानसिक-प्रवृत्तियों को पुष्ट करने के लिए जीवन-वृत्ति के साथ २ कोई अन्य प्रिय-काम भी अवश्य रक्खे।

यह अन्य प्रिय काम जहां मनोरंजन का साधन बनता है वहां साथ ही साथ इसके द्वारा उन दबी हुई शक्तियों को भी प्रयोग में लाने का अवसर मिल जाता है जो परिपुष्ट हो कर पश्चात् अमूल्य सिद्ध होती हैं।

जिस काम में हमारी स्वाभाविक रुचि होती है, वही हमारा सर्वप्रिय-काम भी बनता है।

जीवन का एक सुनहरी नियम है कि :—'रुचि को बढ़ाओ'। किसी न किसी कार्य में, चाहे वह कुछ भी हो, अपनी रुचि को बढ़ाओ।

कई बार एक ऐसा व्यक्ति अपने आप को किसी कार्यालय के मेज़ से जकड़ा पाता है, जो अनुभव करता है कि उसकी स्वाभाविक रुचि शिल्प की ओर है और उसी में वह अपनी दक्षता

दिखला सकता है। यदि ऐसे पुरुष को, अपनी स्वाभाविक रुचि के काम की ओर ध्यान देने का तथा अपनी दबी हुई शक्ति को प्रयोग में लाने का कोई अवसर नहीं मिलता, तो निश्चय ही उस का कार्यालय वाला काम उसे अरुचिकर तथा श्रम-साध्य हो जायगा और उसकी शारीरिक और मानसिक थकान का कारण बन जायगा। वह असन्तुष्ट तथा चिड़चिड़े स्वभाव का हो जायगा। परन्तु वही पुरुष यदि मनबहलाव का कोई ऐसा साधन चुन ले जिसमें उसकी शिल्प-विषयक प्रवृत्तियों को अभ्यास का अवसर मिलता रहे तो उसका दैनिक काम कष्ट-साध्य नहीं रहेगा।

स्नायु-जाल की एक शक्ति के भंडार का ताला खोल देने से वह महान् लाभ प्राप्त कर लेता है। उसका मानसिक पर्यवेक्षण पिछड़ा हुआ और निराशावादी होने के स्थान पर अग्रगामी तथा आशावादी बन जायगा।

मनबहलाव का साधन आनन्दप्रद प्रमाणित होने के अतिरिक्त अधिक उपयोगी भी सिद्ध हो सकता है। इसे जीवन की ठोस पृष्ठ-भूमि भी बनाया जा सकता है।

बहुत से मनुष्य जन्म के महापुरुष थे—यह सच है; उनसे अधिक बनाये गये; परन्तु उनसे भी अधिकों ने अपने आप को स्वयं बनाया।

अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल मन-बहलाव का कोई न कोई साधन अवश्य बनाओ। अपनी रुचि को बढ़ाओ और अपनी अदृश्य शक्तियों को बढ़ने का अवसर दो।

———

अनावश्यक संघर्ष से बचो !

किसी व्यक्ति विशेष के विषय मे यह कहना कि 'वह सदा संघर्ष से बच कर चलता है' एक प्रकार से उस की निन्दा करना है।

यह सत्य है कि जब हम ऐसा कहते हैं तो हमारा तात्पर्य यही होता है कि उस पुरुष मे चरित्र-बल का अभाव है, प्रलोभनों का सामना करने की शक्ति नहीं, और उसकी जीवन नैया भवसागर मे डगमगाती हुई बिना किसी लक्ष्य के बही जा रही है । उसके लिये तो स्वामी रामतीर्थ के शब्दों मे 'जिस जगह किश्ती लगी वह ही किनारा हो गया'। ऐसे पुरुष या तो पक्के आलसी होते हैं या ईश्वर को पहुचे हुये भक्त । उनके मन मे बहुधा यही भाव विद्यमान होता है कि 'किश्ती खुदा पै छोड़दू लगर को तोड दू'।

परन्तु मानवयन्त्र को कम से कम यत्न और परिश्रम स चलाते रहने के लिये संघर्ष से बच कर चलने का प्रश्न हमारे लिए भी कोई कम विचारणीय नहीं । हमे कोई न कोई ढग अवश्य ढूढ निकालना चाहिये जिस के अनुसार काम करते रहने पर हमारा मानवयन्त्र अनायास ही चलता रहे।

काम अपने आप मे कोई इतना दु:खदाई नहीं होता। पर जब उसको पूरा करने के लिए अपनी शक्ति से बढ़ कर परिश्रम करना पड़े तो वह अवश्य कष्ट-साध्य हो जाता है।

हमारे श्रान्त, क्लान्त और चिडचिडा बन जाने का कारण प्राय: वह काम नहीं होता जिसे हम नित्यप्रति करते हैं, बल्कि उस का कारण तो वह काम होता है, जिस मे हमारी स्वाभाविक रुचि तो होती है पर उसको करने का हम समय नहीं पाते ।

एक प्राचीन उपदेशक के इस कथन में कि 'जो काम भी तुम को करने के लिये दिया जाय, उसे अपनी पूरी शक्ति से पूर्ण करने का प्रयत्न करो,' मनोविज्ञान का एक गंभीर तथ्य निहित है।

जो मनुष्य इस प्रकार सच्ची लगन से अपना काम निर्विघ्न समाप्त कर घर को लौटता है, हो सकता है वह थक कर चूर २ हो कर लौटे परन्तु फिर भी वह सांसारिक सुखों का उपभोग करने के लिये तथा मन-बहलाव के काम में तन्मय होने के लिये अपनी स्नायविक शक्ति को प्रचुर मात्रा में बचा लाता है।

इसके विपरीत जिस मनुष्य को रह रह कर अपने हस्तगत कार्य से भिन्न अन्य विषयों के विचारों का निरंतर गला घोंटना पड़ता है, अन्यत्र जाने की इच्छाओं को दबाना पड़ता है, और अप्राप्य विषय सुखों के लिये भटकती लालसाओं को कुचलना पड़ता है, वह शरीर और मनसे पूर्णतया थक कर घर लौटता है। पुनः उसमें कोई अन्य कार्य करने की शक्ति नहीं बच पाती।

जिस शक्ति द्वारा वह मानव-यन्त्र को गतिशील रख सकता था, उसे तो वह व्यर्थ की लड़ाइयां लड़ने में लगा देता है, अब और शक्ति कहां से आये। उसकी शक्ति का भण्डार रिक्त हो जाता है। अतः काम करते समय 'अनावश्यक संघर्ष से बच कर चलना' महा हितकारी सिद्ध होता है।

हस्तगत काम को एकाग्र हो कर करने और असम्बद्ध तथा असंगत विचारों को मन में न आने देने से यह गुण प्राप्त किया जा सकता है।

एक असंतुष्ट कार्यकर्त्ता सदा मानसिक कष्ट का भागी बनता है; इच्छापूर्वक मानसिक कष्ट भोगना तनिक भी लाभ नहीं देता।

आज्ञाकारी सेवक

"मैं, सब प्रकार से, प्रतिदिन, उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा हू," इस कथन को बारम्बार दोहराने से जो आश्चर्यजनक परिणाम निकलते हैं, उन पर पूर्ण विश्वास रख कर हम बड़ी ख्याति प्राप्त कर सकते हैं। इस में एक महान् सत्य निहित है।

मन का शरीर पर सीधा प्रभाव पड़ता है, विशेष रूप से उपचेतना का।

मन को या तो आज्ञाकारी सेवक बनाया जा सकता है या फिर अत्याचारी, स्वच्छन्द शासक।

आजकल अनिद्रा एक बहुत प्रचलित रोग है। यदि तुम भी इस रोग से पीड़ित हो तो अभी इस का प्रबन्ध करो। मन को आज्ञाकारी सेवक मान कर मानसिक शक्तियों को इस व्याधि को निर्मूल करने का आदेश दो। अपनी उपचेतना से भी काम लो।

भेड़ें गिनने की अपेक्षा एक अच्छा उपाय भी है। इस बातका ध्यान रक्खो कि तुम्हारा सोने का ढंग ठीक हो। तुम्हारी शारीरिक स्थिति और तुम्हारे पट्ठे पूर्ण विश्राम की अवस्था में हों। और सब से अधिक इस बात का ध्यान रहे कि तुम्हारे कमरे में ताजा वायु आ जा सके। अन्त में देखो कि तुम्हारी मानसिक अवस्था तो बुरी नहीं।

तब कहो, "मैं सो सकता हूं; निश्चय ही मैं सो सकता हूं"। इन शब्दों को दृढ़ विश्वास के साथ बारम्बार दोहराओ और जब ऐसा करो तो तुम्हारा अभिप्राय भी वस्तुत: यही हो।

तदुपरान्त यह कहो कि, 'अब मुझे नींद आ रही है। मैं थकान अनुभव करता हूं। मैं अपनी पलकों को खुला नहीं रख सकता।' फिर कहो, 'मैं सोता जा रहा हूं'। इसको लगभग बीस बार दोहराओ और दोहराते समय इस कथन की सत्यता पर विश्वास करो।

तदनन्तर बीस के लगभग धीमे धीमे, गहरे सांस लो। दस मिनट ऐसा करने पर तुम सो जाओगे। संभव है, प्रथम बार तुम्हें सफलता न मिले परन्तु कोई चिन्ता न करो। दूसरी रात फिर ऐसा करो; और तब तक करते जाओ जब तक आंखें मिच न जायें और तुम गहरी निद्रा में निमग्न न हो जाओ।

अन्त में तुम्हारी उपचेतना को विश्वास हो जायगा कि जब तुम यह कहते हो कि तुम सोने जा रहे हो तो तुम्हारा अभिप्राय भी यही होता है, और आगे के लिये वह तुम्हारी सहायता को उद्यत रहे गी।

परन्तु यदि तुम्हें ही अपने कथन पर दृढ़ विश्वास नहीं तो तुम्हारी उपचेतना भी तुम्हारी सहायता न करेगी।

यह सच्चे आदेशों का तो उत्साहपूर्वक पालन करती है परन्तु छल कपट का कभी साथ नहीं देती।

शक्ति का अपव्यय

मानव-यन्त्र को अनावश्यक संघर्ष से बचा कर कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिये एकाग्रता की आवश्यकता पर कुछ प्रकाश पीछे डाला जा चुका है। पर कई लोग एकाग्रता को उद्देश्य का—कार्य की निर्विघ्न समाप्ति का—साधन मात्र न बना कर इसी को उद्देश्य

मानने की भूल कर बैठते हैं। वे लोग जीवन में सफल नहीं होते।

आप एक सिद्धहस्त तथा एक अनुभवहीन कार्यकर्ता को एक ही काम पूरा करने का प्रयत्न करते हुए ध्यानपूर्वक देखें।

सिद्धहस्त पुरुष अपने काम को एकाग्रता से करता है परन्तु उसके काम करने के ढंग से यह विदित नहीं होता कि उसको कार्य-सम्बन्धी प्रत्येक बात का ध्यान रखने के लिये कोई कष्ट हो रहा हो या अधिक श्रम करना पड रहा हो। उसकी सारी क्रिया अनायास सरलता से होती दिखाई देती है जब कि वस्तुतः वह भी श्रम कर रहा होता है।

दूसरी ओर अनुभव-हीन तथा अप्रवीण पुरुष भी पूर्ण एकाग्रता से काम करता दिखलाई देता है परन्तु उसके कार्य करने के ढंग से स्पष्ट दुःख झलकता है। यथार्थ में उस का सारा प्रयत्न एकाग्रता की प्राप्ति के लिये व्यय हो रहा है। वह एक घोर मानसिक युद्ध में संलग्न है।

काम की समाप्ति पर वह अपने प्रयत्नों पर अभिमान प्रदर्शित करता है और कार्य के परिणामों का मूल्य अपनी भावनाओं द्वारा निर्धारण करने की भूल कर बैठता है जब कि उसे किये गये काम की मात्रा का भी ध्यान रखना चाहिये।

यदि वह तनिक विचार करे तो उसे पता चल जायगा कि उसने अकारण ही शक्ति का अपव्यय किया। उसके प्रयत्नों के बारे में 'खोदा पहाड़ निकली चुहिया' वाली लोकोक्ति अक्षरशः लागू हो सकती है।

कई लोगों मे यह भ्रांत धारणा पायी जाती है कि काम को जितना क्लिष्ट बना लिया जाय, उतना ही वह भली भांति किया

जा सकता है। इसमे सत्य का लेश मात्र भी नहीं।

प्रत्येक कार्यकर्ता को चाहिए कि वह जहा तक हो सके कम से कम शक्ति का प्रदर्शन कर के काम को संपादित करे।

एक सिद्धहस्त कार्यकर्ता काम करते समय सदैव न्यूनातिन्यून गडबड करता है।

हम पुन स्वभाव के प्रश्न पर आते हैं। जब ध्यान देना स्वभाव बन जाता है, मस्तिष्क एकाग्रता प्राप्ति के प्रयत्न से मुक्त हो जाता है और हस्तगत काम में तल्लीन हो जाने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

सामान्य परिस्थितियों मे सरलतापूर्वक किए गये काम में शीघ्र ही सफलता के दर्शन हो जाते हैं।

एकाग्रता का उचित प्रयोग मानव यन्त्र के लिए वह तेल है जो उसके पहियों को गतिशील बनाता है।

इसका अनुचित प्रयोग वह मैल सिद्ध होता है जो पहियों की गति को बिलकुल रोक देता है।

एकाग्रता प्राप्ति के साधन (१)

काम की निर्विघ्न समाप्ति के लिये एकाग्रता की कितनी आवश्यकता है, यह आप को भली भाति विदित हो गया होगा। आओ अब हम इस विषय पर विचार करें कि मन को एकाग्र किस प्रकार किया जाय। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मन को एकाग्र करने के लिए मन को वश मे लाना अत्यावश्यक है। परन्तु मन स्वभाव से ही बडा चचल और शक्तिशाली है, इसे वश मे लाना तो लोहे के चने चबाने के समान है। जिस ने इसे वश में कर लिया मानो सारे विश्व पर विजय पाली।

भगवान् शंकराचार्य ने लिखा है कि 'जितं जगत् केन मनो हि येन' जगत् को किसने जीता ? जिसने मन को जीत लिया।

इस अजेय मन के आगे धनुर्धारी अर्जुन ने भी घुटने टेक दिये थे और कातर शब्दों में भगवान् कृष्ण से यही कहा था—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥
(गीता ६ । ३४)

हे भगवन्, यह मन बड़ा ही चंचल, हठीला, दृढ़ और बलवान् है; इसे रोकना मैं तो वायु को रोकने के समान अत्यन्त दुष्कर समझता हूँ।

परन्तु इन उल्लिखित उद्धरणों से यह न समझ लेना चाहिए कि मन सर्वथा अजेय है। संसार में कोई बात असम्भव नहीं है। 'A man can do what a man has done' जो बात एक पुरुष ने कर दिखाई हो वह अन्य भी कर सकते हैं। पुण्य-भूमि भारतवर्ष में तो एक नहीं सहस्रों पुरुषों ने मन को अपने वश में कर दिखाया। आवश्यकता है केवल अभ्यास की। यदि पाठक दृढ़-प्रतिज्ञ हो कर दुःख सुख को एक समान जानते हुए अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मन को वश में लाकर एकाग्रता प्राप्ति की सतत चेष्टा करें तो सफलता स्वयं आकर चरण चूमेगी।

मन को एकाग्र करने का अर्थ है किसी वस्तु में अविच्छिन्न ध्यान लगाना। हमारा ध्यान उस वस्तु की ओर स्वतः आकृष्ट हो जाता है जिसकी ओर हमारी स्वाभाविक रुचि हो। अतः एकाग्रता प्राप्ति का मूल आधार रुचि ही है। रुचि को बढ़ाओ।

कई बार हम देखते हैं कि एक पुरुष अपने हस्तगत काम की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दे रहा। उस समय हम यह नहीं कह

सकते कि वह ऐसी स्थिति में है जब कि उसे किसी बात का ध्यान ही नहीं। ऐसी मानसिक स्थिति यथार्थ मे संभव ही नहीं।

उस समय वह पुरुष अवश्यमेव किसी अन्य विषय के बारे में ध्यान करता होगा। मन कभी भी निकम्मा नहीं रह सकता। वह उससे पृथक् हो कर किसी ऐसी वस्तु के पीछे २ भागता होगा जो उसे रुचिकर होगी।

पाठक ! यदि तुम अपनी उदरपूर्ति के लिए किसी व्यवसाय की खोज कर रहे हो तो भूल कर भी किसी ऐसे व्यवसाय को न चुन बैठना जिस की ओर तुम्हारी स्वाभाविक रुचि न हो। तुम उस में अपने मन को कभी भी एकाग्र न कर पाओगे। रुचि के बिना एकाग्रता प्राप्ति की चेष्टा करना शक्ति का दुरुपयोग तथा समय का अपव्यय है।

पर यदि तुम पहले से ही किसी ऐसे काम से सम्बन्ध रखते हो जो तुम्हें तनिक भी रुचिकर नहीं——तब क्या ?

उसे रुचिकर बनाओ !

संसार मे कोई भी कर्म रोचकता से रहित नहीं। आवश्यकता है उस के रुचिकर पक्ष को ढूंढ निकालने की। अतः इस के लिए चेष्टा करो।

अपने काम पर अभिमान करो। अपना एक आदर्श स्थापित करो। अपने गुण दोषों का विवेचन स्वयं करो। परन्तु सब से अधिक ध्यान अपने विचारकोण को नया और ताजा रखने की ओर दो।

सच्चे हृदय से ढूंढ निकालने का प्रयत्न करने पर तुम अपने काम के रुचिकर पक्ष को शीघ्र ही पा लोगे। जब एक बार रुचि बढ़ गई तो ध्यान देना कोई कष्टसाध्य बात न रहेगी।

रुचि बढ़ाना एकाग्रता प्राप्ति का सर्वप्रथम साधन है।

एकाग्रता प्राप्ति के साधन (२)

हम ने देख लिया है कि रुचि को समुन्नत करना एकाग्रता प्राप्ति की अत्यावश्यक सर्व प्रथम सीढ़ी है।

एकाग्रता—एक ओर मन को लगाना—एक ऐसी योग्यता है, जिसे जितना चाहो बढ़ाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में इसे स्वभाव में परिणत किया जा सकता है। और स्वभाव बनाये ही बनता है, अतः सतत अभ्यास की आवश्यकता यहां भी है।

एकाग्र होने के स्वभाव को दृढ़तापूर्वक स्थापित करने के लिए जिस प्रकार के दैनिक अभ्यास का आश्रय लिए बिना काम नहीं चल सकता, उस की एक सरल और साधारण विधि नीचे दी जाती है।

अपने समय में से आध घंटा स्वाध्याय के लिए निकालना कोई कठिन बात नहीं। प्रत्येक पुरुष ऐसा कर सकता है। इस समय को तुम अभ्यास के लिए सुरक्षित रख लो।

प्रायः लोग उपन्यास पढ़ने के आदी होते हैं। कदाचित् आप का मन भी किसी रोचक उपन्यास को पढ़ने के लिए लालायित हो उठे। परन्तु ऐसा नहीं करना। उस के लिए तुम आध घंटे का और पृथक् प्रबन्ध कर लेना।

उपन्यास पढ़ने के लिए किसी परिश्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह रोचक होने के कारण स्वतः आप का ध्यान आकृष्ट कर लेता है।

उसके स्थान पर आप कोई ऐसी ठोस, ज्ञानवर्धक पुस्तक चुन लें जिस में आप का मन न लगता हो। उदाहरण के लिए अर्थशास्त्र, इतिहास या राजनीति की कोई सारगर्भित पुस्तक उठा लो।

चाहे आप का मन माने या न माने आध घण्टे के लिए इस पुस्तक को अवश्य पढ़ो। उस की युक्तियों को समझने का पूरा प्रयत्न करो। अपनी इच्छा-शक्ति से काम लो। चाहे कितने ही प्रलोभन तुम्हें नियम भंग करने को क्यों न उकसायें, अपने ध्यान को पूर्णतया इसी काम में लगाये रक्खो।

प्रथम बार आप इस काम को सुगम नहीं पायेंगे क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में स्वभाव बनाना सुकर नहीं होता। अतः सतत अभ्यास करते जाओ।

एक दिन भी न चूकने का नियम बना लो। नियम बना लेने के उपरान्त उस पर दृढ़ रहो। नियमानुसार प्रति दिन जिस स्थान पर बैठ कर जितने समय के लिये स्वाध्याय करो उसमें किसी दिन भी व्यतिक्रम नहीं होना चाहिए।

धीरे २ तुम अनुभव करोगे कि तुम्हारा स्वयं-निर्धारित कर्म सुगम होता जा रहा है। और तदुपरान्त एक दिन ऐसा आ जायगा जब तुम्हें इस काम के लिए प्रयत्न करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं रहेगी।

सतत अभ्यास ने तुम्हें आशा से बढ़ कर पुरस्कृत कर दिया होगा। अब यह काम कष्ट-साध्य न रह कर रोचक प्रतीत होता होगा।

रुचि उत्पन्न हो जाने पर अब और उत्तेजना की आवश्यकता नहीं रहेगी। प्रसंगवश तुम्हारा ज्ञान भी पर्याप्त समृद्ध हो गया होगा।

सतत अभ्यास और नियमानुवर्त्तिता से भी मन स्थिर होता है।

एकाग्रता प्राप्ति के साधन (३)

मन को एकाग्र करने में नियमानुवर्त्तिता से बड़ी सहायता मिलती है। सारे काम ठीक समय पर नियमानुसार होने चाहियें। प्रातः काल बिछौने से उठ कर रात को सोने के समय तक दिन भर के समस्त कामों की एक ऐसी दिनचर्या बना लेनी चाहिये कि जिस समय जो कार्य करना हो, मन अपने आप स्वभाववश उसमें तत्काल प्रवृत्त हो जाय।

जिन पुरुषों का मन इस प्रकार उनके वश में है वे अपनी मानसिक शक्तियों को स्वेच्छानुसार जिधर चाहें लगा सकते हैं। अब उन्हें इस बात की आवश्यकता नहीं रहती कि कोई उनका पथ-प्रदर्शक बने। *क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य इसका* निश्चय वे स्वयं कर लेते हैं।

जो लोग अभी साधक हैं और अपने मन की असीम शक्तियों को प्रयोग में लाना नहीं सीख पाये, वे बहुधा इस कारण असफल रह जाते हैं क्यों कि वे बहुत कुछ स्वयं-सिद्ध मान लेते हैं। वे सतत अभ्यास नहीं करते। पूर्ण सिद्धि के बिना वृद्धि कहां!

एकाग्रता प्राप्ति के लिए पीछे एक सरल अभ्यास का रेखा-चित्र बनाया जा चुका है। और भी अनेकों साधन हैं; अतः *साधक को सदैव सावधान रहना चाहिए कि वह किसी भी ऐसे* अवसर को हाथ से न जाने दे जो एकाग्रता को स्वभाव में परिणत करने में सहायक सिद्ध हो सके।

यथा इस पुस्तक को, जिसे तुम आध घंटे के लिए प्रति दिन पढ़ने का प्रयत्न करना चाहते हो, तब तक प्रारम्भ न करो, जब तक तुम दिन के अन्य कामों से उत्पन्न थकान को विश्राम द्वारा दूर न कर लो। जब तुम्हारा शरीर और मस्तिष्क पूर्णतया स्वस्थ

हो कर पूर्वावस्था में आ जाय, तभी पढ़ना आरम्भ करो। अन्यथा तुम एक भारी असुविधा के साथ एक महत्त्वपूर्ण काम को आरंभ करोगे।

यथाशक्ति इस बात का ध्यान रक्खो कि तुम्हारी परिस्थितियां और वातावरण तुम्हारे पथ में बाधक न बनें, अपितु सहायक सिद्ध हों। ऐसा शांत स्थान चुनो जहां विघ्न-बाधायें तुम्हारा ध्यान भंग न कर सकें।

कुछ समयोपरान्त इन छोटी मोटी बातों का इतना महत्व नहीं रहेगा परन्तु प्रारम्भ करते समय इन की आवश्यकता पर जितना भी ज़ोर दिया जाय थोड़ा है।

अपनी शारीरिक स्थिति को भी मत भूलो। आराम-पूर्वक बैठो। बैठने के स्थान पर प्रकाश की कमी न होनी चाहिए।

प्रारम्भिक अवस्था में, उन शारीरिक कठिनाइयों को छोड़ कर भी जिन से आप बुद्धिमत्ता से बच सकते हैं, यह काम पर्याप्त कठिन प्रतीत होगा। अतः आरंभ करते समय जहां तक हो सके, मन को चिन्ता और क्लेश से पूर्णतया विमुक्त कर लो।

तुम्हारा महान् उद्देश्य यह हो कि तुम्हारा स्नायु-जाल शत्रु न बन कर तुम्हारा मित्र बना रहे। अतः यथाशक्ति अपने काम को स्नायु-जाल के लिए सुखद और सुगम बनाने का प्रयास करो।

यदि तुम सब प्रकार की चिन्ताओं तथा उद्विग्नताओं को बरबस बाहिर निकाल कर विचारपूर्वक कार्यारम्भ करोगे तो निश्चय ही सफलता पाओगे।

एकाग्रता को हम उस सामर्थ्य का भी नाम दे सकते हैं जिस के द्वारा हस्तगत कार्य के अतिरिक्त अन्य सांसारिक धंधों को हम पूर्णतया तब तक भुला सकते हैं जब तक हस्तगत कार्य सिद्ध न हो जाय।

एकाग्रता प्राप्ति के साधन (४)

कई पाठक पूछेंगे कि मन को एकाग्र करने से भला लाभ ही क्या ?

इस प्रश्न का एक उत्तर तो यह है कि मन को एकाग्र करने की शक्ति के बिना मनुष्य किसी काम का नहीं। जो लोग मन के समान चंचल और अस्थिर मति वाले हैं, वे संसार में कभी भी सफल नहीं होते। एकाग्रचित्त पुरुष ही इस संसार में प्रत्येक दिशा में अगुआ बन पाते हैं।

बड़े २ वेतन उन लोगों को ही मिलते हैं जो अपने मन के स्वामी हैं; जो अपनी मस्तिष्क-शक्ति को सुव्यवस्थित ढंग से जिधर चाहें उपयोग में ला सकते हैं।

मनोविज्ञान के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर यह है कि एकाग्रता के बिना हम अपने आप के लिए भी उपयोगी प्रमाणित न होंगे।

किसी विषय में निरन्तर ध्यान देना मन के शासन के बिना संभव नहीं।

मन का यह स्वभाव है कि वह कुछेक क्षणों से अधिक इच्छा-पूर्वक किसी एक ही वस्तु की ओर ध्यान नहीं दे सकता। यदि हम प्रत्येक अस्थायी मनोभाव की दया पर अपने आप को नहीं छोड़ना चाहते तो मन को एकाग्र करने की शिक्षा अवश्य ग्रहण करनी होगी।

"एक ही ध्येय में, स्थिरतापूर्वक, बिना इधर उधर भटके, ध्यान लगाने की शक्ति, निस्सन्देह, अपूर्व बुद्धि की सूचक है" यह श्रीमान् चेस्टरफील्ड का कथन है।

इसमें संदेह नहीं कि अपूर्वबुद्धि वाले महापुरुषों में ये गुण जन्म सिद्ध होता है, किन्तु मैं इस सिद्धान्त को भी दृढ़तापूर्वक मानता हूँ कि महापुरुष बनाये भी बनते हैं और अधिकतर वे अपने प्रयत्नों से ही बन दिखलाते हैं।

जो पुरुष अपनी आन्तरिक शक्तियों का पूरा ज्ञान रखता है और उन्हें उपयोग मे लाने की विधि को भी जानता है, जिस काम को करना चाहेगा, अवश्य कर दिखलायेगा।

एकाग्रता और रुचि का परस्पर सम्बन्ध आप जान चुके हैं। जिस विषय मे जितनी अधिक रुचि बढ़ाओगे, उसमे उतनी ही सरलता से एकाग्र हो सकोगे। रुचि बढ़ाने का अर्थ है उस विषय के बारे में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करना।

ज्यों २ तद्विषयक ज्ञान बढ़ता जायगा आप का ध्यान अपने आप उसी ओर आकृष्ट होता जायगा।

जो विषय पहले आप को नीरस प्रतीत होता था अब वही रोचक तथा मनोरंजक लगेगा।

अतः एकाग्रता प्राप्ति के लिए अपने ज्ञान की वृद्धि करो, नवीन कल्पनाओं तथा मौलिक विचारों को समुन्नत करो।

ज्ञान-रहित मन ही एकाग्र होने मे कठिनाई उत्पन्न करता है।

———

सफलता की भावना

रोम का कवि विरजिल नौकाओं की एक दौड़ का वर्णन करते हुए जीतने वाले दल के बारे में लिखता है कि, 'वे जीत सकते हैं क्योंकि उन्हें विश्वास है कि वे जीत सकते हैं"।

कायरता से बढ़ कर मानवयन्त्र की गति को रोकने वाली और कोई वस्तु नहीं।

अपनी शक्तियों में दृढ़ विश्वास से बढ़ कर इसे उत्तेजना देने वाली कोई अन्य सामर्थ्य नहीं।

सफलता उसी पुरुष को प्राप्त होती है जिसे दृढ़ विश्वास दिलाया गया हो कि वह सफल हो सकता है।

सफलता की भावना एक स्वर्णिम चाभी है जिस से सुअवसर के द्वार सुगमता से खोले जा सकते हैं। जिन पुरुषों में यह मनोहर कल्पना करने की योग्यता विद्यमान होती है, वे उन्नति की चोटी पर पहुचते देर नहीं लगाते।

कारण यह है कि पुरुष 'यद्वि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति" जैसा मन में ध्यान करता है वैसा ही वाणी से बोलता है और शरीर से कर्म करता है। मानव प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि मनुष्य के विचार तथा उस की कल्पनायें क्रियात्मक रूप धारण करने की पूरी चेष्टा करती हैं और क्रियायें स्वभाव में परिणत होने की ओर अग्रसर होती हैं।

यदि तुम्हें अपनी आशा के अनुसार सफलता नहीं मिलती, जब कि अन्य व्यक्ति उसी काम में आश्चर्यजनक उन्नति कर रहा है, तो इस का कारण ढूंढ लेना कोई कठिन बात नहीं।

निश्चय ही तुम पर यह भय सवार है कि तुम सफल नहीं

हो सकते । एक कवि के शब्दों में मैं तो आप को यही कहूंगा कि–

'भय रहित जीना, भय रहित मरना उचित है मित्र ।
भय सहित जीवन मरण हैं दोनों महा अपवित्र ॥
निर्भय रहो, दृढ़ हो गहो वरबोध वर्धक पंथ ।
यह दे रहा उपदेश है हरि कथित गीता ग्रन्थ ॥

तुम तो भयग्रस्त हो कर स्वयं अपने पर एक शक्तिशाली प्रतिबंध लगा लेते हो । परन्तु दूसरा व्यक्ति दृढ़ विश्वास रखता है कि उसकी उच्चाकांक्षा अवश्य पूर्ण होगी ।

उसकी भावना तो समुचित है परन्तु तुम अनुचित ढंग से कल्पना कर रहे हो । अतः तुम्हारी अपेक्षा उसे अधिक सफलता होती है ।

सदैव अपने आप पर तथा अपनी शक्तियों पर विश्वास रक्खो । सत्य जानो कि तुम भी उन कार्यों को सिद्ध कर सकते हो जिन्हें अन्य कर दिखाते हैं; आवश्यकता है केवल सफलता की भावना करने की योग्यता की ।

अपने आपको विश्वास दिलाओ कि तुम में भी काम करने की क्षमता है । सदैव सफलता के स्वप्न देखो । उपचेतना से काम लो ।

प्रतिदिन सोने से कुछ समय पूर्व और जागने पर तत्काल अपनी आन्तरिक शक्तियों के गुण गाने में कुछ मिनट व्यय करो ।

अज्ञानी मनुष्य इसे मिथ्याभिमान का नाम देगा परन्तु एक मनोवैज्ञानिक इस को आत्म-सूचना या आत्म-संकेत कह कर पुकारेगा ।

मेरे कहने का यह अभिप्राय मत समझ लेना कि सफलता

की भावना करने से ही तुम सभी काम सिद्ध कर सकते हो । हां ऐसी कल्पना आप की कार्य क्षमता को पचास प्रतिशत अवश्य बढ़ा देगी।

सोपान का निर्माण

'हमारे जीवन की अधिकांश घटनाएं दैवयोग से घटित होती हैं," इस मत के विरुद्ध यद्यपि संसार के साहित्य में बहुत कुछ लिखा जा चुका है, तोभी, मानव-सन्तति इसी को हठपूर्वक मानती चली जारही है।

इस से बड़ा भ्रम संसार में और कोई नहीं। श्री योगवासिष्ठ में गुरु वसिष्ठ भगवान् राम जी को स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि-

'यथा सयतते, येन तथा तेनानुभूयते'।
स्वकर्मैवेति चास्तेऽन्या व्यतिरिक्ता न दैवदृक्॥

'जो जैसा प्रयत्न करता है वह उसके फलको वैसा ही अनुभव करता है, अपने कर्म से पृथक् दैव या प्रारब्ध कुछ नहीं।' यो० वा० ५।३

"जिस सोपान द्वारा हम ऊपर चढ़ते हैं, उस का निर्माण हम स्वयं करते हैं," यह एक मनोवैज्ञानिक का सारगर्भित कथन है, "कोई भी अच्छा या बुरा काम नष्ट नहीं होता। भले ही हम भूल जाय या क्षमा करदें, किन्तु हमारा स्नायु-जाल न तो कभी भूलता है और न क्षमा करता है।"

सारांश यह कि कोई भी बात तुच्छ नहीं। बुद्धिमान् लोग प्राचीन काल से इस बात को दोहराते आ रहे हैं कि प्रत्येक विचार तथा प्रत्येक काम चरित्र पर एक अमिट छाप छोड़ जाता है। एक वर्ष के पश्चात् हम वही बन जाते हैं जिस की कल्पना हम आज बैठ

कर करते हैं। हम जो कुछ सोचते या करते हैं उसका फल अवश्य निकलता है। अतः वर्तमान ही भविष्य का निर्माता है।

शरीर के विषय पर ध्यान देने से इस तथ्य की सच्चाई सहज ही जांची जा सकती है। जो मनुष्य औषधियों द्वारा अथवा अन्य व्यसनों द्वारा शरीर का दुरुपयोग करता है, दण्ड भुगतने के बिना छुटकारा नहीं पाता। प्रकृति के बैंक में से जमा किये हुये धन से अधिक निकाल लेना कदापि संभव नहीं।

मानसिक पक्ष मे भी यह बात कुछ कम सत्य नहीं। यहां भी प्रकृति एक हृदय-हीन ऋणदायिनी सिद्ध होती है।

जो मनुष्य असावधानी से काम करता है, जो जीवन के सामान्य दायित्वों की उपेक्षा करता है, भले ही समझे कि इस मे चिन्ता की कोई बात नहीं परन्तु एक न एक दिन उसको सारा बिल अवश्य चुकाना पड़ेगा।

वह असावधानी जो आज नगण्य समझी जाती है, किसी अधिक दायित्वपूर्ण काम का अथवा किसी बड़ी समस्या का सामना करने के समय असफलता का कारण प्रमाणित होगी।

संसार मे बड़े २ कामों को करने वाला पुरुष वस्तुतः वही होता है जिसने उस सोपान का स्वयं निर्माण किया हो जिस के सहारे वह साधारण कामों को भली भांति करता हुआ शिखर पर पहुँचा।

मनुष्य का चरित्र दैवयोग से नहीं बन जाता। वह उसका निर्माण स्वयं करता है और अपनी इच्छा के अनुकूल उसको किसी न किसी सांचे में ढालता है।

ठीक ढंग से सोचोगे तो तुम काम भी ठीक ढंग से करोगे।

छोटे २ कामों को भी मन लगा कर करो, बड़े २ काम अपनी देख भाल स्वयं कर लेंगे।

"बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजे।
परन्तु पूर्वापर सोच लीजे॥
बिना विचारे यदि काम होगा।
कभी न अच्छा परिणाम होगा"॥

संकोची मत बनो !

कई लोग संकोच के कारण उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं हो पाते। वे लोग भीरु, बद्ध-जिह्व, तथा बोलने और काम करने के समय सदा आगा-पीछा करते हैं।

वे नहीं समझते कि 'दीर्घसूत्री विनश्यति' बहुत देर तक आगा-पीछा करने वाला नाश को प्राप्त होता है।

ऐसे पुरुष धीरे २ आत्म-विश्वास को भी खो बैठते हैं और प्रायः अपने मन को यह समझने के लिए विवश कर देते हैं कि वे समीपवर्ती लोगों से सब प्रकार से हीन हैं।

इस हीनता की भावना की उत्पत्ति का कारण यह होता है कि उनके विचार बाह्यमुख न हो कर अन्तर्मुख होते हैं। उनकी सारी शक्तियां केवल इस बात को जानने के लिए एकाग्र हो पाती हैं कि अन्य लोग उनके बारे में क्या विचार रखते हैं।

इस प्रकार लोकमत से भयभीत रहने वाले पुरुष अपनी शक्तियों का अपव्यय करते हैं। साधारणतया सभी लोग अपने विचारों में ही लवलीन रहते हैं। उनके पास अन्य पुरुषों के विषय में चिन्ता करने का प्रायः समय नहीं होता।

संकोच को दूर करने की सर्वोत्तम विधि निम्नलिखित है।

(१) अपनी रुचि के क्षेत्र को विस्तृत करो।

(२) किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न करो।

ज्यों २ तुम्हारी रुचि का क्षेत्र विस्तृत होता जायगा, त्यों २ तुम्हारे विचार बाह्यमुख होते जायंगे तथा तुच्छ और कल्पित-अन्यायों से दूर हटते जायंगे।

यदि जीवन में तुम ने अपना कोई उद्देश्य निश्चित कर लिया हो तो जिन को लोग कठिन परीक्षायें समझते हैं, उन्हें तुम सुअवसर समझने लगोगे।

जिन मनुष्यों के जीवन में किसी निश्चित उद्देश्य का अभाव होता है, वही मनुष्य बहुधा संकोची होते हैं। उन्हीं के सिर पर इस भाव का भूत सदा सवार रहता है कि अन्य लोगों के मेरे बारे में क्या विचार हैं।

ऐसे लोगों का जीवन जल-धारा में बहती जा रही उस लकड़ी के टुकड़े के समान होता है, जो तरंगों के थपेड़ों से कभी इधर बह जाता है, कभी उधर।

संकोची लोग अपनी विचार-शक्ति को आत्म-ग्लानि तथा आत्म-विग्रह द्वारा व्यर्थ नष्ट कर देते हैं जब कि इसी के सदुपयोग से वे सफलता की सीढ़ी को शीघ्रातिशीघ्र तय कर सकते हैं।

अतः जीवन का कोई लक्ष्य बनाओ और अपनी विचार-शक्ति को उसे पूरा करने के लिये प्रयोग में लाओ। परन्तु इस से भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि उस लक्ष्य पर तथा उसको संपादित करने वाली अपनी सामर्थ्य पर दृढ़ विश्वास रक्खो।

लक्ष्य स्थिर कर लेने पर तुम अपनी उच्चाकांक्षाओं की पूर्ति के साधनों की खोज में इतने तल्लीन हो जाओगे कि मनोताप तथा

आत्म-ग्लानि के लिये तुम्हें तनिक भी समय न मिल सकेगा।

अब तुम्हें यह चिन्ता तनिक भी न सतायेगी कि लोग तुम्हारी निन्दा करते हैं या स्तुति। इस के विपरीत अब तुम अन्य लोगों का मूल्य आंकने तथा उन्हें समझने की चेष्टा करोगे। अपने जीवन का उद्देश्य निश्चित कर लेने से तुम शक्ति का एक ऐसा प्रवाह उत्पन्न कर लेते हो जिस के समक्ष अन्य अनर्थकारी विचारों को टिकना कठिन हो जाता है।

जिस पुरुष को अपनी मंज़िल आंखों के सामने दिखाई देती हो, वह भला उस तक पहुंचने के लिये सीधे मार्ग को छोड़ कर पगडंडियों का राह क्यों लेगा।

सूक्ष्म निरीक्षण

यदि आपने एक अंग्रेज लेखक रुडयार्ड किपलिङ्ग की 'किम' नाम की पुस्तक को पढ़ा हो तो आप को स्मरण होगा कि 'किम' को गुप्तचर का काम सिखाने के लिए सर्वप्रथम छोटे २ अनेक पदार्थों से परिपूर्ण एक थाली दिखाई गई, जिसकी वस्तुओं को कुछ क्षण देखने के पश्चात् उसे उन के नाम बताने थे।

वास्तव में उसे आंखों को उपयोग में लाने की अर्थात् सूक्ष्म निरीक्षण की शिक्षा दी जा रही थी।

बहुत कम व्यक्ति आंखों को सावधानी से प्रयोग में लाते हैं। यही कारण है कि इतने लोग बुरी स्मरण शक्ति होने पर असंतोष प्रकट करते देखे जाते हैं।

स्मरण शक्ति स्मरण रखने तक ही सीमित नहीं। यह तो इस क्रिया की विधि का अन्त मात्र है।

स्मरण रखने के लिए यह अत्यावश्यक है कि स्मरणीय विषय की छाप तुम्हारे मन पर अमिट रूप से पड़े।

देखना कुछ और बात है, निरीक्षण कुछ और। दोनों में महान् अन्तर है।

यदि तुम किसी वस्तु पर सामान्य दृष्टि डालो और उसे केवल देखो तो उसकी दृष्टि-विषयक छाप तुम्हारे मन पर अवश्य पड़ेगी परन्तु उसका चित्र कुछ धुन्धला सा तथा अस्पष्ट रहेगा।

पर यदि तुम उसे देखने के साथ २ उसका सूक्ष्म निरीक्षण भी करो तो उस वस्तु के सभी अंग तुम्हारे मन पर अमिट रूप से अंकित हो जायेंगे, तुम स्वयमेव उस का मिलान अन्य पदार्थों से करने लग जाओगे। कई कल्पित वस्तुओं के साथ उसका सम्बन्ध स्थापित करोगे।

आगे चल कर आप को पता चलेगा कि ऐसा करना अच्छी स्मरण-शक्ति की आधार-शिला रखने के समान है।

'किम' का खेल निरीक्षण शक्ति को विकसित करने का एक अच्छा उपाय है। इस का अभ्यास करना अति हितकर है क्योंकि जब तक तुम्हें सूक्ष्म निरीक्षण करने की योग्यता प्राप्त न होगी तुम कभी भी स्मरण रखने में सफल न हो सकोगे।

कहावत है कि Practice makes a man perfect 'करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान'। अतः सूक्ष्म निरीक्षण की शक्ति को समुन्नत करने के लिये नित्यप्रति अभ्यास करो।

अपनी आंखों के साथ २ अपने कानों का भी उपयोग करो। हो सकता है कि तुम्हारे कान तो पूर्णतया स्वस्थ हों जब कि तुम यथार्थ में मानसिक बहरे होवो।

स्पर्शेन्द्रिय को व्यवहार में लाते हुए, नेत्र मूंद कर, 'किम'

से खेल को खेलना भी अति लाभकारी है।

यदि आप अच्छी स्मरण-शक्ति के इच्छुक हैं तो अपनी इन्द्रियों को सुशिक्षित करना आरम्भ कर दो।

निरीक्षण-कला का अभ्यास

इन्द्रियों को सुशिक्षित करने के विषय पर उन लोगों को गम्भीरता से विचार करना चाहिए, जो अपनी स्मरण-शक्ति को बढ़ाने के इच्छुक हों।

यदि तुम केवल देखने और सूक्ष्म निरीक्षण करने में अन्तर जानना चाहते हो तो इस अधोलिखित अभ्यास को कर देखो।

आप ने डाकखाने की एक आने वाली टिकट को सहस्रों बार देखा होगा। क्या आप उस टिकट का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकते हैं?

कागज़ का एक खाली टुकडा लो और डाकखाने की टिकट पर जो कुछ मुद्रित है, अपनी स्मरण शक्ति के आधार पर उसकी पूरी सूची तैयार करो।

जब तुम उन सब बातों को लिख लो जो तुम्हें स्मरण आ सकें तो एक दूसरा कागज का टुकडा लो और सामने डाकखाने की टिकट रख लो। अब उससे एक नयी सूची बनाओ।

इस बात का ध्यान रक्खो कि कोई बात छूटने न पाये। जब तक तुम्हें निश्चय न हो जाय कि कोई बात लिखने से नहीं बची बारम्बार टिकट पर दृष्टि दौड़ाओ।

तदुपरान्त दोनों सूचियों को परस्पर मिलाओ। तुम्हें यह जान कर बडा आश्चर्य होगा कि तुम्हारा ज्ञान कितना कम है। अब तुम

जान जाओगे कि मेरे इस कथन का क्या अर्थ है कि जब हम वस्तुओं को देखते हैं तो हम प्रायः उन का निरीक्षण नहीं करते।

निरीक्षण शक्ति को बढ़ाने का एक और उत्तम उपाय यह छोटा सा खेल है, जिसे चार्लस डिक्कन्स बड़े चाव से खेला करता था। उस की विधि इस प्रकार है।

सायंकाल काम करने के पश्चात् कार्यालय से घर को लौटते समय मार्ग में किसी दुकान की ऐसी खिड़की का ध्यान करो जो भिन्न २ वस्तुओं से भरी हुई हो। जब तुम उस के सामने से हो कर आगे बढ़ो तो तनिक भी ठहरे बिना देखो कि कितनी वस्तुओं को तुम अपनी स्मरण-शक्ति में बिठा सकते हो।

ज्यों ही घर पहुंचो, जो कुछ स्मरण रहा हो, उसे लिखलो। दूसरे दिन अपनी सूची को साथ लेते जाओ और खिड़की के सामान के साथ उसका मिलान करो।

प्रथमबार तुम्हें आश्चर्य होगा कि तुम कितना कम स्मरण रख सके; किन्तु सतत अभ्यास के पश्चात् तुम एक दृष्टि में ही बहुत कुछ स्मरण रख सकने की क्षमता प्राप्त कर लोगे।

अभ्यास के माहात्म्य को कभी मत भूलो।

स्मरण-शक्ति का एक रहस्य

अपनी इन्द्रियों को सुशिक्षित करते समय गन्ध, स्वाद और स्पर्श को मत भूलो।

यह सत्य है कि आधुनिक सभ्यता के प्रभाव से इन्द्रियों द्वारा एकत्रित की हुई सूचना इतनी विश्वसनीय नहीं रही, फिर भी यह बात निर्विवाद है कि जितने अधिक सहायक हमारी स्मरण-शक्ति

की पीठ पर होंगे उतनी ही वह तीव्र होगी।

सांसारिक ज्ञान की प्राप्ति का साधन क्यों कि हमारी इन्द्रियां ही हैं, अतः उनका कुशाग्र होना अत्यावश्यक है।

इस भूमण्डल पर, जो वस्तुतः रंगों, दृश्यों तथा ध्वनियों का एक अद्भुत प्रदेश है, अनेकों ऐसी शक्तियां हैं जिनके विषय में हमारी इन्द्रियां बिलकुल मौन हैं।

वे तो उन संदेशों का जो बाह्य-जगत् निरन्तर भेजता रहता है, केवल कुछ अंश ही हृदयांकित कर पाती हैं। हम केवल इस बात का ध्यान रख सकते हैं कि ऐसा आंशिक अंकण सुस्पष्ट तथा अमिट हो।

आओ, अब हम सारी बात का आशय समझने का प्रयत्न करें।

मनोवैज्ञानिकों की सम्मति है कि स्मरण-शक्ति विचारों के परस्पर सम्बन्ध से सम्बन्ध रखती है। यदि दो विचार एक साथ मन में बिठाये जायं तो वे परस्पर सम्बन्ध बना लेते हैं।

भविष्य में, जब एक की याद दिलायी जाती है तो दूसरा स्वयं स्मरण हो जाता है।

परीक्षा के लिए हेस्टिंग्ज की लड़ाई का ध्यान करो। १०६६ ईस्वी अपने आप साथ में स्मरण आ जायगी। कारण यह कि ये दोनों बातें स्कूल में एक साथ स्मरण कराई गई थीं। जब तुमने एक का ध्यान किया दूसरी अपने आप स्मरण हो गई।

स्मरण-शक्ति का रहस्य बिलकुल साधारण है। स्मरणीय बातों का आपस में दृढ़ सम्बन्ध स्थापित कर देना ही इस का आधार है। परन्तु प्रारम्भ में इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि मुख्य बात की छाप तुम्हारे मस्तिष्क पर गहरी तथा अमिट हो।

कार्यसाधक इन्द्रियां वह उत्तोलक-दण्ड है, जो स्मरण-शक्ति को सचेष्ट करने में सहायक सिद्ध होता है।

भू-परिष्कार

यदि मेरे सारे पाठक मेरे सम्मुख बैठे हों और मैं उन से यह प्रश्न करूं कि 'तुम्हारी स्मरण-शक्ति कैसी है ?' तो निस्सन्देह मुझे बड़े २ विचित्र उत्तर मिलेंगे।

क्रमानुसार वे श्रेष्ठ से ले कर निकृष्ट तक होंगे। कई तो यह उत्तर देंगे कि एक समय था, जब कि उनकी स्मरण-शक्ति अति तीव्र थी, परन्तु अब कुछ काल से शिथिल होती जा रही है और कई कहेंगे कि वह श्रेष्ठ है। पर श्रेष्ठ के अतिरिक्त बाकी सभी उत्तर अशुद्ध समझने चाहिएं।

सचाई तो यह है—और मैं चाहता हूं कि यह भली भांति प्रकट कर दी जाय—कि यदि आप इस समय पूर्णतया स्वस्थ हैं तो सच जानो कि अब की अपेक्षा आप की स्मरण-शक्ति कभी भी अच्छी न थी।

शारीरिक स्वस्थता, यथार्थ में, उत्तम स्मरण-शक्ति का सर्वप्रथम साधन है। अस्वस्थ शरीर से बढ़ कर मस्तिष्क की शक्ति का ह्रास करने वाली और कोई वस्तु नहीं।

उन लोगों को, जो स्मरण-शक्ति बढ़ाने के अभिलाषी हैं, मैं यही कहूंगा कि सब से पहले अपने स्वास्थ्य को सुधारो। पश्चात् अपनी शक्तियों के बारे में यदि तुम्हारी भावनायें तुच्छ हों, तो उन को हृदय से निकाल बाहर करो।

मुझ पर विश्वास करो कि अभी तुम्हारी स्मरण-शक्ति का कुछ नहीं बिगड़ा। बात कदाचित् इतनी ही है कि तुम ने अपनी

इन्द्रियों को अभी तक सुशिक्षित नहीं किया अथवा तुम्हें स्मरण करने की विधि नहीं आती।

निरीक्षण-शक्ति को सतत अभ्यास द्वारा समुन्नत करो; निश्चय ही तुम अच्छी स्मरण-शक्ति के स्वामी बन जाओगे।

चातुरी का स्मरण शक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं, यदि है तो बहुत कम। बहुतेरे चतुर लोग बुरी स्मरण-शक्ति के कारण असंतोष प्रकट करते देखे गये हैं।

यदि तुम अपने आप को विश्वास दिला चुके हो कि तुम्हारी स्मरण-शक्ति निकम्मी है, तोभी उत्साह-हीन होने की कोई बात नहीं।

आज से फिर समझ लो कि यह तो भली चंगी है। तुम्हें तो *केवल यह सीखना है कि यह अधिक उपयोगी कैसे बने।* इसकी विधि अगले लेखों में पढ़िए।

स्मरण-शक्ति बढ़ाने का प्रथम नियम

जिन लोगों ने 'शर्लाक होम्स' नाम की अंगरेजी पुस्तक को पढ़ा है, उन को विदित होगा कि गुप्तचर शर्लाक होम्स अनेक हत्या-काण्डों का चलता फिरता विश्वकोष था। सहस्रों घटनायें वह विस्तार सहित वर्णन कर सकता था। परन्तु साथ ही अनेकों विषयों का, जिनके बारे मे सामान्य व्यक्तियों को भी पर्याप्त ज्ञान होता है, उसे तनिक भी बोध न था।

शर्लाक होम्स जैसे मनुष्य संसार में अनेकों मिल सकते हैं। बहुतेरे मनुष्य जो अपने दैनिक कार्य के बारे में साधारण बातें भी स्मरण नहीं रख सकते, क्रिकेट आदि क्रीड़ा-विषयक बातों को स्मरण रखने में आश्चर्यजनक शक्ति का प्रदर्शन करते हैं।

एक विद्यार्थी, जो संभव है अपनी पढ़ाई का एक अक्षर भी न दोहरा सकता हो, अपनी उस पुस्तक के बारे में, जिसमें उसने भिन्न २ देशों की टिकटों का संग्रह कर रखा हो, प्रायः ऐसे पूर्ण ज्ञान का परिचय देता है कि बड़े २ विद्वान भी विस्मित हुए बिना नहीं रह सकते।

शर्लाक होम्ज से उस पाठशाला के विद्यार्थी तक रहस्य एक ही है।

प्रत्येक पुरुष उन्हीं बातों को स्मरण रख पाता है, जिनमें उसकी रुचि होती है।

रुचि को मैं ऐसी चाभी से तुलना कर चुका हूं जो मनुष्य की अदृश्य शक्तियों के वृहत् भण्डारों को सुगमता से खोल सकती है; रुचि ही एकाग्रता प्राप्ति की सीढ़ी है और रुचि से ही स्वभाव बन पाता है।

रुचि और अच्छी स्मरण शक्ति यमज बहिनें हैं। जिन बातों में हमारी रुचि हो उनको स्मरण रखना ही सहज नहीं उनको भूल जाना भी अतीव कठिन होता है।

यदि तुम अपनी स्मरण शक्ति के बारे में बिलकुल हताश हो चुके हो तो अपने मस्तिष्क की किसी एक कोठरी की भली भांति पड़ताल कर देखो।

उसके किसी न किसी कोने में तुम अनेकों ऐसी बातें भरी पाओगे, जिनकी स्थिरता तुम्हें अवश्य अचम्भे में डाल देगी।

उनका सम्बन्ध भले ही क्रिकेट, फुटबाल, या किसी अन्य काम से हो, परन्तु उन से तुम्हें यह विदित हो जायगा कि वस्तुतः तुम्हारी रुचि का विषय क्या है।

जीवन को सुखी और सफल बनाने के लिए उस रुचि को बढ़ाओ। स्मरण-शक्ति बढ़ाने का प्रथम नियम भी यही है।

इच्छा-शक्ति का प्रभाव

मन के अध्ययन की मनोरंजकता का एक कारण यह है कि इसका राज्यान्तर्गत प्रदेश अधिकांश में अज्ञात है।

विज्ञान ने कुछ ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर लिया है, जिनके अनुसार मन काम करता है। यथा हम यह भली भांति जान गये हैं कि भिन्न २ मानसिक क्रियायें किस प्रकार से घटित होती हैं, उनका आधार क्या है तथा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उनका सदुपयोग कैसे किया जा सकता है।

परन्तु अभी तक हमारे मानसिक ज्ञान की हमारे शारीरिक ज्ञान से तुलना नहीं की जा सकती।

हम अपनी शारीरिक शक्तियों की सीमा को भली भांति जान चुके हैं। यथा हमें विदित है कि एक सुशिक्षित और बलवान् व्यायाम-कर्ता केवल छः फीट के लगभग ही ऊंचा कूद सकता है या दस सैकण्ड में १०० गज ही दौड़ सकता है।

अतः हमारा यह अनुमान कभी भी अशुद्ध नहीं हो सकता कि न तो कोई दस फीट कूद सकता है और न कोई पांच सैकंड में सौ गज दौड़ सकता है। परन्तु हम अपनी मानसिक शक्तियों की सीमा को दूर से भी नहीं देख सके। इस का विस्तार कहां तक है, हमें तनिक भी ज्ञात नहीं।

यदि मन सम्बन्धी गवेषणाओं से, अन्ध-विश्वास को पूर्णतया पृथक् भी कर दिया जाय, तो भी विज्ञान द्वारा प्रतिपादित सत्य इतनी मात्रा में बचा रह जाता है कि हम अचम्भे में पड़ कर यह निर्णय करने में असमर्थ हो जाते हैं कि मानसिक शक्तियों की कोई अन्तिम सीमा भी है या नहीं।

विद्वान यह भली भांति सिद्ध कर चुका है कि एक सशक्त मन दूसरे अशक्त मन पर सहस्रों मीलों की दूरी से भी अपना प्रभाव डाल सकता है।

वस्तुतः इच्छाशक्ति, जिस का विस्तार सहित वर्णन आगे चल कर किया जायगा, शक्ति के एक अनन्त भण्डार की जननी है।

इसका प्रभाव हमारे प्रत्येक काम पर अवश्य पड़ता है। अतः स्मरण-शक्ति बढ़ाने के लिए इच्छा-शक्ति की सहायता अवश्य प्राप्त करो। यह तुम्हारे प्रत्येक काम में उत्तेजना प्रदान करे, बाधा सिद्ध न हो।

'जहां चाह, तहां राह' यह कहने की वैज्ञानिक विधि है कि 'जब तक इच्छापूर्वक प्रयत्न न किया जाय, मनुष्य यह नहीं जान सकता कि वह एक काम को कर सकता है या नहीं'।

अतः यदि तुम इच्छापूर्वक, उत्साह के साथ किसी विषय को स्मरण करने का प्रयत्न करोगे तो अवश्यमेव बिना किसी कठिनाई के स्मरण करने में सफल हो जाओगे।

कल्पना-शक्ति से काम लो

यदि तुम अपनी स्मरण-शक्ति समुन्नत करना चाहते हो तो सर्वप्रथम इस बात का पता लगाओ कि किस प्रकार की कल्पना करने की कुशलता तुम्हें जन्म से प्राप्त है।

आंखें मून्दलो, रेलके इंजिन की कल्पना करो। क्या तुम मन की आंखों से रेल के इंजिन को देख सकते हो?

क्या तुम्हारा मानसिक चित्र उतना ही स्पष्ट है जितना कि इंजिन का छपा हुआ चित्र ?

जो लोग कल्पित पदार्थों के मानसिक चित्र भली भांति देख सकते हैं, वे दृष्टि-विषयक कल्पना करने में कुशल होते हैं।

पुनः आंखें बन्द करलो। कल्पना करो कि वर्षा की बून्दें छप छप करती हुई तुम्हारी खिड़की के शीशों पर पड रही हैं।

क्या तुम इस शब्द को कल्पना द्वारा सुन सकते हो ? क्या यह मानसिक शब्द ठीक उसी प्रकार का है जैसा कि वर्षा की बूंदें खिड़की के शीशों पर पड़ कर उत्पन्न करती है ?

यदि हां, तो तुम्हें श्रवण-विषयक कल्पना-शक्ति प्राप्त है।

इसी प्रकार स्पर्श, स्वाद और गंध का अनुभव मन द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करो। भिन्न २ लोगों में भिन्न २ प्रकार की कल्पना-शक्ति होती है। कई कल्पना द्वारा केवल देख पाते हैं; दूसरे शब्द सुन सकते हैं; बहुत से दोनों प्रकार की कल्पना कर सकते हैं।

यह ढूंढना अत्यावश्यक है कि किस प्रकार की कल्पना करने की कुशलता तुम में विद्यमान है। कारण बिलकुल साधारण है।

यदि तुम दृष्टि-विषयक कल्पना करने में कुशल हो तो उस वस्तु को देखलो, जिसे तुम स्मरण रखना चाहते हो।

उदाहरण के तौर पर, यदि यह किसी का नाम है तो इसे लिख लो।

यदि तुम श्रवण-विषयक कल्पना करने में प्रवीण हो तो निस्संदेह तुम स्मरणीय बात को कानों द्वारा भली भांति सुनते हो।

अतः यदि तुम किसी कविता को कण्ठस्थ करना चाहते हो

तो उसे ऊंचे स्वर से बार २ पढ़ो।

स्मरण रहे कि मन एक यंत्र है। पहले यह सीखना चाहिये कि यह किस प्रकार काम करता है। तदुपरान्त इस के पीछे स्वयं न चल कर इसे अपने आदेशानुसार चलाओ।

यदि तुम बुद्धिमत्ता से कल्पना-शक्ति द्वारा काम लो तो यह स्मरण-शक्ति की महान् सहायक सिद्ध हो सकती है।

नाम और आकृतियां

प्रायः, प्रत्येक पुरुष के मुख से यह कई बार सुनने में आता है कि 'मुझे लोगों की आकृतियां स्मरण नहीं रहतीं' या 'मैं नाम स्मरण नहीं रख सकता'।

इस का कारण यह होता है कि हम बहुधा नामों को ध्यान-पूर्वक नहीं सुनते या सुना अनसुना कर देते हैं।

शीघ्रता से दिये गये परिचय में नाम को न सुन पाना कोई बड़ी बात नहीं। परन्तु उचित तो यह है कि यदि तुम नाम को नहीं सुन सके तो फिर पूछ लो।

लोग इसे बुरा नहीं समझते, केवल तुम्हारे मन में ही यह भावना होती है कि वे इसे बुरा समझेंगे। हां, यदि दोबारा मेल होने पर उन्हें पता चल जाय कि तुम्हें उनका नाम भी स्मरण नहीं, तो वे अवश्य बुरा मानेंगे।

अतः नाम को भली भांति सुनो और तदुपरान्त पिछले पाठ में बताये गये उपायों से उसे स्मरण कर लो।

यदि तुम दृष्टि-विषयक कल्पना करने में कुशल हो तो एकांत पाकर उसे लिखलो। यदि तुम्हारी कल्पना श्रवण-विषयक है तो ऊंचे स्वर से उसे दोहराओ।

दूसरी बात है नाम और आकृतिका परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना। इसके लिये मन ही मन में दोनों को दृढ़तापूर्वक एक साथ रखने का प्रयत्न करो।

सूक्ष्म निरीक्षण के लाभ आप जान ही चुके हैं। अतः अपनी निरीक्षण-शक्ति को व्यवहार में लाओ। शीघ्र ही उस व्यक्ति का एक मानसिक चित्र खींच लो। उसकी आंखें किस रंग की हैं? उस के मुख का आकार कैसा है? उसके बालों का कौन सा रंग है? इत्यादि।

यह समस्त व्योरा उन खूंटियों का काम देगा जिस पर स्मरण-शक्ति को अवलम्बित किया जा सकता है।

अगली बार ज्यों ही तुम मुख देखोगे, नाम अपने आप स्मरण हो जायगा।

निरीक्षण करने का अर्थ है एकाग्र हो कर ध्यान देना। जिस वस्तु में यथार्थ में ध्यान दिया जाता है, उसको भूल जाना अतीव कठिन हो जाता है। नाम और आकृतियों के स्मरण न रहने से आप अपनी स्मरणशक्ति को बुरा मत कहें। यह तो आप की असावधानी तथा ध्यान न देने का परिणाम है।

यदि आप उपर्युक्त ढंग से नाम और आकृतियां स्मरण रखने का अभ्यास करें तो निश्चय ही अपनी स्मरण-शक्ति के बारे मे आप की धारण बदल जायगी।

—:o:—

कविता को कण्ठस्थ करना

जब आप किसी सुन्दर कविता को सुनते हैं वा पढ़ते हैं तो उसको कण्ठस्थ करने के लिए आप का मन स्वयमेव लालायित हो उठता है। गद्य के सुन्दर २ भागों के बारे में भी ऐसी लालसा प्रायः उत्पन्न हो जाया करती है।

अतः ऐसे अवसरों पर उन्हें सुगमता से स्मरण करने के लिए रटने की एक शुद्ध विधि नीचे लिखी जाती है।

मनोवैज्ञानिकों ने स्मरण-शक्ति के विषय पर बहुत मनन के पश्चात् जो अनुभव प्राप्त किया है उसका तथ्य यह है कि कविता को टुकड़े २ करके कण्ठस्थ करने की अपेक्षा यदि वारम्बार आद्योपान्त पढ़ा जाय तो शीघ्र स्मरण हो सकती है।

साधारण—किन्तु दोषपूर्ण—विधि यह है कि कुछ पंक्तियों को वारम्बार तब तक दोहराओ जब तक वे भली भांति स्मरण न हो जायं; तदुपरान्त कुछ पंक्तियां इसी प्रकार फिर स्मरण की जायं और तदनन्तर कुछ और। इस प्रकार बहुत प्रयत्न के पश्चात् सारी कविता कण्ठस्थ की जा सकेगी।

इस विधि से बहुत सा अनावश्यक परिश्रम करना पड़ता है। कई स्थानों पर पंक्तियों के अन्त और आदि में कृत्रिम सम्बन्ध भी स्थापित करने पड़ते हैं, जब कि वहां पंक्तियों में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता। यही कृत्रिम सम्बन्ध आगे चल कर स्मृति के पथ में बाधा प्रमाणित होते हैं। और बहुधा इन्हीं के कारण कई लोग किसी विशेष पंक्ति तक तो कविता को दोहरा लेते हैं परन्तु तदुपरान्त उन का मस्तिष्क खाली हो जाता है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कविता को कण्ठस्थ करने

की शुद्ध विधि उसे बारम्बार आद्योपान्त पढ़ जाना ही है।

कुछ बार ऐसा करने के पश्चात् तुम अनुभव करोगे कि तुम सारी कविता को आद्योपान्त दोहरा सकते हो क्यों कि तुमने अनजाने ही उसको कण्ठस्थ कर लिया होगा।

उपर्युक्त विधि, वस्तुतः, पांच से लेकर दस पद्यों तक की कविता के लिए परमोपयोगी है।

पर यदि आप को बहुत लम्बी कविता कण्ठस्थ करनी हो तो प्रथम उसको कई छोटे २ टुकड़ों में बांट लो और फिर प्रत्येक टुकड़े को उल्लिखित रीति से स्मरण कर लो।

दोनों विधियों को अपने आप कर देखो। उनके परिणाम तुम्हें रोचक प्रतीत होंगे।

हमारी स्मरण-शक्ति का खेल

स्मरणशक्ति को बढ़ाने के लिए जो जो खेल बनाये गये उन में से सर्वोत्तम खेल पाठकों के लाभार्थ नीचे दिया जाता है।

खेलने वाली दो साधारण ताशों के पत्तों को परस्पर फेंट दो। पत्तों को उनका मुख नीचा करके एक मेज़ पर फैला दो।

मान लो 'अ', 'ब' और 'स' तीन खेलने वाले हैं। सर्व-प्रथम 'अ' अपनी इच्छा के अनुसार कोई दो पत्तों का मुख सीधा कर देता है। यदि वे जोड़ा निकलें—अर्थात् दो बादशाह, दो गुलाम या एक ही नाम के कोई अन्य दो पत्ते—तो 'अ' उन्हें उठा लेता है और पुनः दो पत्ते और सीधे करता है। यदि ये जोड़ा न बनें तो 'अ' उनका मुख नीचे करके उनको यथास्थान रख देता है। तदनन्तर 'ब' दो पत्तों का मुख सीधा करता है।

मान लो 'अ' ने एक बादशाह और एक गुलाम सीधा किया। अब 'ब' एक बेगम और एक गुलाम का मुख सीधा करता है। यदि वह 'अ' के गुलाम के स्थान को भूल नहीं गया तो वह तत्काल उसको उठा लेगा और ठीक निकलने पर गुलामों के जोड़े को उठाने का अधिकारी होगा।

तदनन्तर वह और पत्तों को सीधा करता है। जब 'ब' जोड़ा बनाने में असफल हो जाता है और पत्तो को यथास्थान उनका मुख नीचे की ओर करके रख देता है, तब 'स' की बारी आ जाती है और इसी प्रकार खेल चलता रहता है।

एक खिलाड़ी जितने भी जोड़े बना सके बनाता जाता है और तब तक उसकी बारी समाप्त नहीं होती जब तक वह ऐसा करने मे असफल नहीं हो जाता।

इस खेल मे जीत उसी खिलाडी की होती है, जो अन्य खिलाड़ियों द्वारा सीधे किये गये पत्तों का नाम या स्थान भली भांति स्मरण रख सके।

इस खेल को खेलने की कोई दूसरी विधि बिलकुल नहीं। यदि तुम यह स्मरण नहीं रख सकते कि कौन २ से पत्ते सीधे किए गए और कहां २ वे पड़े हैं, तो तुम कदापि जीत नहीं सकते।

पूर्ण एकाग्रता की भी अत्यावश्यकता है। यदि तुम तनिक सी असावधानी कर बैठे तो अवश्य हार जाओगे।

बुरी स्मरण शक्ति वाले कुछ बार इस खेल को अवश्य खेल देखें। कदाचित् उनकी धारणा बदल जाय।

कतिपय नियम

स्मरण-शक्ति को समुन्नत करने के लिये अधोलिखित नियमों पर चलना अत्यावश्यक है।

हमारे हृदय पर उस वस्तु की गहरी तथा अमिट छाप पड़े जिसके बारे में कुछ स्मरण रखना हो। रुचि को बढ़ाना और पूर्ण एकाग्रता की प्राप्ति मुख्य साधन हैं।

ऐसा विचार कभी मत करो कि तुम्हारी स्मरण-शक्ति बुरी तथा निकम्मी है। इसके विपरीत अपने आपको जताते रहो कि तुम्हारी स्मरण-शक्ति उत्तम है। यह आत्म-सूचना बड़ी लाभप्रद प्रमाणित होती है। और स्मरण रहे कि ऐसा कहने में तुम तनिक भी झूठ नहीं बोलते।

इसके अतिरिक्त अपनी स्मरण-शक्ति पर विश्वास रक्खो। किसी बात को स्मरण करने की चेष्टा करने पर जो तथ्य सर्वोपरि हो उसको प्राय सत्य जानो।

बहुधा वही विचार सत्य सिद्ध होते हैं जो मन में सर्वप्रथम प्रकट होते हैं।

स्मृति का आधार है विचारों का पारस्परिक सम्बन्ध। स्मरण रखने के लिए एक ही प्रकार की बातों को सदैव साथ २ स्मरण करो। दो वस्तुओं का परस्पर जितना अधिक मेल होगा उतना ही शीघ्र एक का विचार दूसरी को याद दिलाने की चेष्टा करेगा। सोचना मानव प्रकृति है। परन्तु तर्कानुसार सोचने का अभ्यास करो। उद्देश्य-हीन की भांति न सोचो, न बोलो। ये सब बातें सहायक सिद्ध होती हैं।

यह स्मरण रक्खो कि अच्छा स्वास्थ्य अच्छी स्मरण शक्ति

का मूल आधार है। पर्याप्त व्यायाम और ताजा वायु स्फूर्तिमय मन के लिए अत्यावश्यक हैं।

अपने अड़ोस पड़ोस के लोगों तथा वस्तुओं के बारे में अपने ज्ञान को बढ़ाओ। सभी वस्तुएं, जिनका तुम्हारे विचारों से कुछ भी सम्बन्ध है, तुम्हारी स्मरण-शक्ति की कदाचित सहायक हैं।

अन्त में, मैं आपको पुनः यही सम्मति दूंगा कि रुचि को बढ़ाओ।

मानसिक खिन्नता का निरोध

मेरे सभी पाठक कभी न कभी मानसिक खिन्नता को अवश्य अनुभव करते होंगे, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं। इस व्याधि का सामना प्रायः प्रत्येक पुरुष को करना पड़ता है।

खिन्नावस्था में यह बताना साधारणतया कठिन होता है कि वस्तुतः बात क्या है। हमारा मुख उदास और चित्त खिन्न हो जाता है, आत्म-ग्लानि की भावना जाग उठती है, संसार नीरस और अंधकारपूर्ण दिखाई देने लगता है, और जीवन निष्प्रयोजन सा प्रतीत होता है।

इस दुःखप्रद व्याधि की भी एक औषधि है, जिस प्रकार अन्य रोगों की।

इस की उत्पत्ति का कारण एक ही विषय पर अधिक देर तक सोचना या किसी ऐसी कठिनाई के बारे में विचार करना है, जिसका हल मिलना कठिन हो।

जब किसी कठिन समस्या पर निरंतर विचार करते २

मस्तिष्क घूमने लग जाता है परन्तु हल के दर्शन अभी दुर्लभ दिखाई देते हैं तो एक स्वस्थ पुरुष भी इस मानसिक व्याधि का शिकार हो जाता है।

मानसिक विकारों के साथ २ शारीरिक परिवर्तन भी अवश्य होते हैं, अतः हमारा शरीर हमारी खिन्नावस्था को अवश्य व्यक्त कर देता है।

डाक्टर लोग शारीरिक रोगों के लिए प्रायः वायु-परिवर्तन की सम्मति दिया करते हैं। मानसिक व्याधियों को दूर करने के लिए मानसिक परिवर्तन कर देखो।

जब तुम खिन्नता अनुभव करने लगो, सोचना स्थगित कर दो। अपने मन को किसी अन्य काम या विषय में लगा दो। वह काम या विषय जितना ही मनोरंजक तथा भिन्न होगा उतना ही हितकर सिद्ध होगा।

उदाहरण के तौर पर घर से दूर निकल जाओ और टैनिस इत्यादि कोई खेल खेलना प्रारम्भ कर दो। खेल में मन लगाओ। धीरे धीरे तुम उस खेल में इतने तल्लीन हो जाओगे कि खिन्नता अनुभव करने का तुम्हें अवसर ही न मिलेगा।

शरीर की भांति, मस्तिष्क भी थक जाया करते हैं। थके हुए मस्तिष्क को स्वस्थ बनाने के लिए और नयी स्फूर्ति प्रदान करने के लिए, ताज़ा वायु, धूप, हंसमुख मित्र और किसी काम में तन्मय हो जाने से बढ़ कर उपयोगी वस्तुएं और कोई नहीं।

उपर्युक्त विधि से मानसिक परिवर्तन करने के पश्चात् तुम्हारी मानसिक शक्तियां पुनः पुष्ट हो जायंगी। तुम नये दृष्टिकोण से देखना आरम्भ कर दोगे और यह जानकर तुम्हें अचम्भा होगा कि ी खिन्नता न जाने कब दूर हो गई।

स्नायु-जाल

आज कल अपनी दुर्बलताओं के लिए, अपने स्नायु-जाल को दोषी ठहराना बड़ा लोक-प्रिय हो गया है। बहुधा, वे लोग, जिनकी स्नायु-शक्ति कमज़ोर होती है इस बात पर मिथ्याभिमान करते देखे जाते हैं।

मुझे संदेह है कि उन का कुछ अस्पष्ट सा विचार यह है कि यह त्रुटि स्वभाव, सहृदयता, शिष्टता तथा विचारों की विलक्षणता की द्योतक है।

यथार्थ में सचाई तो इस बात में है कि ऐसे लोग अपने लिए तथा अन्य सभी व्यक्तियों के लिए अहितकर होते हैं।

जब वे लोग जो कि अशान्त और चिड़चिड़े होते हैं अपने स्नायु-जाल को दोषी ठहराते हैं, तो उनका कथन केवल मिथ्या प्रलाप ही होता है। अधिकांश अवस्थाओं में उनकी अशान्ति और चिड़चिड़ेपन का कारण अजीर्णता से अधिक कुछ नहीं होता।

परन्तु कोई भी कारण क्यों न हो, अभिमान करने की निश्चय ही कोई बात नहीं होती। यदि वास्तविक कारण अजीर्णता नहीं तो आत्म-संयम का अभाव होगा।

मनुष्य या तो मन का स्वामी हो सकता है, या फिर मन को स्वामी होने देता है।

कार्य-सम्पादन करने के लिए मन को वश में रखने की आवश्यकता को तुम स्वीकार कर चुके हो। तो फिर पूर्ण विश्राम की प्राप्ति के हेतु मन को वश में रखना क्यों नहीं सीखते ?

यदि छोटी मोटी बातें बिगड़ कर तुम्हारे स्वभाव को संक्षुब्ध

कर देतीहैं, तो विश्राम करो कि इन के लिए दोषी स्नायु-जाल नहीं। यह तो आत्म-संयम का अभाव है जिस का कारण यह अनभिज्ञता है कि कब और कैसे विश्राम करना चाहिए।

और मुझ पर विश्वास करो, सहज ही अधीर और अशान्त हो उठने में गर्व करने की कोई भी बात नहीं।

जब तुम विश्राम करो, ठीक ढंग से करो। अपने सब अंगों को शिथिल कर दो; अपने शरीर को सुखी बनाओ।

अपने मन को भी समान सुखी रक्खो। मत भूलो कि अधिकांश घटनायें जिनके बारे मे तुम चिन्तित हो अभी तक नहीं घटीं। कोई भी इंजिन तीव्रतम गति से निरन्तर नहीं चल सकता। प्रति दिन विशुद्ध विश्राम के लिए कुछ समय पृथक् रक्खो।

मन के इंजिन को भी कभी २ तेल की आवश्यकता आ पड़ती है; और उसके लिए सर्वोत्तम तेल शान्ति है।

जो लोग मन को वश में रखना सीख चुके हैं, अधीरता और अशान्ति के शिकार नहीं होते। वे अपनी दुर्बलताओं या त्रुटियों के लिए स्नायु जाल को दोषी नहीं ठहराते।

सीधा सोचो

संसार में बहुतेरे लोग ऐसे हैं जो निरंतर चिन्ता में निमग्न रहते हैं। उनका यह रोग प्रायः असाध्य हो चुका है, परन्तु यदि उनसे पूछा जाय तो वे यह मानने को कभी भी उद्यत न होंगे कि वे चिन्तातुर रहते हैं।

ऐसे लोग अपने परिवार तथा अपने मित्रों के सभी विचारों का दायित्व अपने ऊपर ले लेते हैं; उन की त्रुटियाँ और उनकी

भूलों का बोझ अपने कन्धोंपर डाल लेते हैं; और अपना अधिकांश समय वर्तमान के लिए नहीं बल्कि अन्य लोगों के भविष्य-चिन्तन में व्यय करते हैं।

वे केवल असाध्य निराशावादी ही नहीं होते। सच तो यह है कि वे प्रत्येक अवस्था में अंधकारपूर्ण पक्ष को देखने के अतिरिक्त अपनी चिन्ताओं में—जो कि प्रायः सत्य होती हैं—अन्यपुरुषों की चिन्ताओं को भी वरबस जोड़ते रहते हैं, जो बहुधा कृत्रिम होती हैं।

वस्तुतः यह टेढ़ा सोचने का परिणाम है। जो लोग सीधा नहीं सोचते उनमें एक प्रकार का मानसिक आलस्य पाया जाता है—उनमें तथ्यों का यथार्थ मूल्य आंकने और उनके पारस्परिक सम्बन्ध को निर्धारण करने के प्रति एक अनिच्छा होती है।

वे लोग नहीं समझते कि अकारण चिन्ता किसी को भी लाभ नहीं पहुंचाती, यहां तक कि स्वयं चिन्ता करने वाले व्यक्ति को भी। इसका फल सदैव चिड़चिड़ापन ही निफलता है।

जीवन लम्बा है, और संसार एक विशाल तथा विस्तृत प्रदेश है। छोटी-मोटी भूलों का मूल्य उस चित्त-संक्षोभ से भी कम होता है जो चिन्ता-ग्रस्त पुरुष को होता है।

अतीत की भूलें और भविष्य के भय.चिन्ता करने के लिए दोनों ही एक समान तुच्छ विषय हैं।

> गतशोको न कर्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत्।
> वर्तमानेषु कार्येषु वर्तयन्ति विचक्षणाः॥

चिंतातुर पुरुष वस्तुतः कुछ २ स्वार्थी और अपने आप को सभी वस्तुओं का केन्द्र समझने वाला होता है।

प्रत्येक विषय पर एक ही दृष्टिकोण से विचार किया जाता है कि 'अमुक बात का मुझ पर क्या प्रभाव पड़ेगा'? कोई आश्चर्य

नहीं कि ऐसे पुरुष टेढ़ा सोचा करते हैं।

यदि आप भी सीधा सोचने में असमर्थ हैं तो अपने से अपने आप को पृथक् कर लो।

निश्चेष्ट हो कर विचारों को ग्रहण करने के बदले अपने आप को विचारों का प्रेषक बनाओ।

वस्तुओं को उनके वास्तविक स्वरूप में देखने की चेष्टा करो। तिल को ताड़ मानने से क्या लाभ ?

धनकमाने की विधि

क्या आप के मन में कभी यह विचार भी उत्पन्न हुआ है कि क्यों इतने लोग अपने अमूल्य समय का अधिकांश भाग अपने अड़ोस पड़ोस के व्यक्तियों से निष्प्रयोजन ईर्ष्या करने में गँवा देते हैं ? अथवा उनके समान बनने की क्यों निष्फल चेष्टा करते हैं ?

कुमारी 'क' ने अभिनेत्री बन कर आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। मैं भी क्यों न ऐसा ही करूं ?

श्रीमान् 'ज' ने लेखक बन कर बहुत धन का संग्रह कर लिया है। मैं भी क्यों न यही काम करूं ? ऐसी बातें हमने कई बार सुनी होंगी और अधिकों ने कही भी होंगी।

मानव प्रकृति की यह एक बड़ी भूल है कि हम केवल इस कारण किसी काम को करने के लिये लालायित हो उठते हैं क्योंकि किसी अन्य पुरुष ने उस में सफलता पायी। परन्तु इस प्रकार आवेश में आकर किसी का अनुकरण करने से जहां एकाध सफल होता है वहां सहस्रों को असफलता का मुख देखना पड़ता है।

यदि तुम मुझ से इस का कारण पूछो तो मैं यही उत्तर दूंगा कि तुम तुमहो और कुमारी 'क' कुमारी 'क' है। यह इतना साधारण, सरल और स्पष्ट उत्तर है कि हम बहुधा इस की उपेक्षा कर देते हैं।

अपने को अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखो। तुम में कहीं न कहीं कोई ऐसी शक्ति छिपी है, गुणों का कोई ऐसा सम्मिश्रण है जो पूर्णतया तुम्हारा अपना है।

संसार उत्सुकतापूर्वक तुम्हारे उस गुण के चमत्कार को देखने की प्रतीक्षा कर रहा है। प्रत्येक व्यक्ति में नवीनता तथा मौलिकता की सम्भावना है।

तुम अपनी सूक्ष्म परीक्षा करो। भूल जाओ अन्य लोग क्या कर रहे हैं। यह तथ्य हृदयंगम कर लो कि कुमारी 'क' और श्रीमान् 'ज' का रुपयों में रंगरलियां मनाने का कारण केवल इतना है कि उन्होंने अपने लिये उस काम को ढूंढ निकाला है जिसे वे सर्वोत्तम कर सकते हैं—और कर रहे हैं।

तुम भी अपने लिये ऐसा ही काम ढूंढ निकालो। लकीर के फकीर कभी उन्नति नहीं करते।

तुम अपनी उस विलक्षण शक्ति वा गुण के लिये पूरी खोज करो जिस के आगे संसार नत-मस्तक होना स्वीकार करेगा।

तुम्हारी वह शक्ति अवश्य अद्वितीय होगी क्योंकि तुम तुम हो और कोई भी अन्य व्यक्ति पूर्णतया तुम्हारे सदृश नहीं हो सकता।

सच जानो वह शक्ति तुम्हारे धन कमाने का कारण सिद्ध होगी।

निश्चिन्त मन

पाठक ! जब तुम को छुट्टियां मिलें तो मैं चाहता हूं तब तुम सच्चे अर्थों में छुट्टियां मनाओ ।

मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से छुट्टियों की उपयोगिता मनो-विनोद तक ही सीमित नहीं । इन का महत्व दैनिक काम के अभ्यास से छुटकारा पाने तथा शारीरिक स्वास्थ्य को पूर्वा-वस्था में लाने से कहीं अधिक है ।

मन की निश्चिन्त अवस्था का नाम ही वस्तुतः छुट्टी है ।

जब तक तुम सांसारिक काम धंधों को भुला कर पूर्णतया निश्चिन्त नहीं हो जाते छुट्टियां तुम्हें विशेष लाभप्रद प्रमाणित न होंगी ।

छुट्टियों में वायु-परिवर्तन, दृश्य-परिवर्तन अथवा किसी अन्य परिवर्तन, के लिये घर से दूर निकल जाओ ।

अपने जीवन की झलक मात्र भी साथ न ले जाओ । भूल जाओ कि स्मरण-शक्ति भी कोई वस्तु है । विस्मृति का आश्रय लो ।

बहुतेरे लोग काम काज और घरेलू चिन्ताओं का भारी बोझ अपने साथ ले जाते हैं । मुझ पर विश्वास करो, उन्हें इसके लिये भारी दण्ड भोगना पड़ता है ।

ज्यों ही तुम गाड़ी में पांव रक्खो, भूल जाओ कि तुम्हें संसार से कोई काम है । न चुकाये हुये बिलों की तनिक भी चिन्ता मत करो । अनागत कठिनाइयों तथा चिन्ताओं के बारे में भूल कर भी मत सोचो ।

राजनीति की बातों को मस्तिष्क से निकाल बाहर करो । भूल जाओ कि समाचार-पत्र नाम की भी कोई वस्तु है ।

बहुत से लोग भविष्य की सैर ही किया करते हैं; अन्य अतीत में ही निमग्न रहते हैं।

तुम अब एक बार पूर्णतया वर्तमान में रह देखो। अपने आप को उसी युवावस्था मे विचार करो जब तुम अपने बारे मे औरों को चिन्तित छोड़ कर स्वयं संतुष्ट रहा करते थे।

छुट्टियों के दिन वर्ष का वह समय है जब मानसिक शिथिलता एक बड़ा भारी गुण सिद्ध होती है।

सहज ही बिगड जाने वाले कोमल यन्त्रों से समय समय पर काम नहीं लिया जाता, क्योंकि लोहा भी थक जाता है।

इस कारण अपने अति सुकोमल मन रूपी यन्त्र को भी कभी कभी छुट्टी दो।

केवल एक बार तो सोचना बन्द करो, बिलकुल निष्क्रिय हो जाओ। छुट्टियों के दिनों में यथार्थ में मन की ऐसी ही अवस्था होनी चाहिये।

चरित्र-निर्माण

चरित्र बनाने की आवश्यकता पर अधिक लिखने की इतनी आवश्यकता नहीं। हमारे अनर्थकारी विचारों और सार-हीन उपदेशों को उपजाने का उत्तरदायित्व इसी पर है।

उदाहरण के तौर पर यह एक निरर्थक विचार है कि मनुष्यों को उपदेशों, शिक्षाओं तथा अच्छे प्रवचनों द्वारा शिष्ट, कार्यकुशल और सभ्य बनाया जा सकता है।

ऐसा समझ लेना एक साधारण भूल है कि इन उपदेशों, शिक्षाओं आदि में कोई रहस्यपूर्ण शक्ति है जो स्वयमेव आश्चर्य-जनक परिवर्तन लाने की चेष्टा करती है।

यदि हम साधारण विचार-यंत्र ही होते तो ऐसी सम्भावना करनी उचित थी। पर दुर्भाग्य-वश हम सब सोचने की अपेक्षा काम करना अधिक सुगम पाते हैं।

जो सम्बन्ध हम अपनी मानसिक स्थितियों और कामों में स्थापित करते हैं, वही वस्तुतः हमारा चरित्र है। जो लोग उपदेशों प्रवचनों तथा अन्य ऐसी बातों में श्रद्धा तथा विश्वास रखते हैं इस बात को भूल जाते हैं कि इन सम्बन्धों को स्थापित करने का एक मात्र उपाय, उनको सोच समझकर निर्माण करना है।

एक मनुष्य का चरित्र उसके लिए किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नहीं बनाया जा सकता। वह अपने भाग्य का विधाता आप है।

उदाहरण के तौर पर आलस्य की एक मात्र औषधि ठोस काम ही है। आलस्य और परिश्रम दोनों ही स्वभाव हैं। यह पूर्णतया हमारे अधिकार की बात है कि हम इसे समुन्नत करें या उसे।

तुम एक असत्यवक्ता को उपदेशों द्वारा सत्य बोलने वाला नहीं बना सकते। उसको सच बोलने का अभ्यास करना होगा।

हम कुशलतापूर्वक व्यवहार करने से ही कुशल बन सकते हैं।

इस सारे विषय का सम्बन्ध आत्म-संयम तथा इच्छा-शक्ति के साथ है, जिनके बारे में हम आगे चल कर विचार करेंगे।

पर अभी हम ये दो तीन नियम बता देते हैं। शीघ्रता के लिये शीघ्रता करने की अपेक्षा आचार को पथ दिखलाने तथा नियंत्रण में रखने के लिए व्यय की गई शक्ति अधिक मूल्यवान है।

किसी काम को केवल इस विचार से करने में तनिक भी महत्व नहीं कि वह कठिन है।

प्रयत्न के लिए प्रयत्न करना शक्ति को नष्ट करने के समान है।

अन्त में,मैं तुमको बता देना चाहता हूं कि 'काम से पूर्व सोचना' एक सुनहरी नियम है, जिसे कभी मत भूलो।

मनुष्य जाति के गधे

पीछे, इस बात की ओर संकेत किया जा चुका है कि चरित्र बनाने में इच्छा-शक्ति का बड़ा हाथ है।

इस से पूर्व कि हम यह विचार करें कि इच्छाशक्ति को किस प्रकार समुन्नत किया जा सकता है, हमें यह निश्चय कर लेना चाहिये कि इच्छा से हमारा अभिप्राय क्या है।

बहुत से लोग दुराग्रह को ही दृढ़ इच्छा का लक्षण समझते हैं। अनगिनत लोग अपने व्यवहार द्वारा अपने आप को मनुष्य जाति के गधे प्रमाणित करते हैं और भ्रमवश अपनी मूर्खताओं पर मिथ्याभिमान करते हैं।

चाहे वह चार टांगों पर चले वा दो पर गधा गधा ही है। और एक हठीला गधा एक हठीला गधा है।

सत्य तो यह है कि दुराग्रही लोग प्रायः भीतर से शक्तिहीन होते हैं; वे न तो अपने विचारों को वश में रख सकते हैं न अपने मनोभावों को। उन्हें उचित अनुचित का तनिक ज्ञान नहीं होता।

नहीं; दुराग्रह इच्छाशक्ति नहीं।

अब हम एक और असत्य धारणा का निराकरण कर देना चाहते हैं; यह है 'बलवान, मौन मनुष्य' के बारे में।

मुझे इन 'बलवान् मौन मनुष्यों' के बारे में सदैव सन्देह रहता है। मेरा विचार है कि वे प्रायः इस कारण मौन रहते हैं

क्यों कि उनके पास कहने को कुछ होता ही नहीं।

नियंत्रित और भली भांति काम करने वाली सुदृढ़ इच्छा अपने स्वामी को कभी भी निरंतर चुप न रहने देगी। निर्णयात्मक विचार अनिवार्यतः निर्णयात्मक भाषण और निर्णयात्मक कार्य की ओर अग्रसर करता है।

निर्बल इच्छा का एक संशय-रहित चिह्न निर्णय करने की असमर्थता है। एक अन्य दृष्टिकोण से निर्णय को क्रियात्मक रूप देने की असमर्थता में भी इसे देखा जा सकता है।

निष्कपट हो कर कुछ क्षण अपने आप के साथ बिताओ। क्या ये चिह्न तुम में भी दिखाई देते हैं?

यदि हां, तो तुम्हें अपनी इच्छाशक्ति को समुन्नत करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता है। कदाचित् तुम भी मनुष्य जाति के गधे हो? तुमको भी अशक्त इच्छा को सशक्त इच्छा में परिवर्तित करने के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

जैसा कि आगे के लेखों में बताया जायगा, इस का भी एक उपाय है।

शक्ति का घर

इच्छा-शक्ति की आवश्यकता पर जितना अधिक लिखा जाय कम है। इच्छा, यथार्थ में, मानव-यन्त्र की समस्त शक्ति का घर है। इच्छा-शक्ति वह महान् परिचालक शक्ति है जो शरीर तथा मन के प्रत्येक काम के भीतर छिपी रहती है।

हम में से बहुत कम लोगों को ऐसे मन का स्वामी कहलाने का सौभाग्य प्राप्त है, जो मन सुदृढ़ इच्छा-शक्ति के साथ २ युक्ति-संगत तर्क का मेल रक्खे।

तौभी, यह एक ऐसा आदर्श है जिसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना ही चाहिए, और जितना हम इस आदर्श के निकट पहुँच पायेंगे उतना ही हमारा जीवन सुखी होता जायगा।

"हमारी सामर्थ्य और हमारा बुद्धि-बल, हमारा वैभव और हमारा सौभाग्य", प्रोफेसर जेम्स महोदय कहते हैं, 'ऐसी वस्तुएं हैं जो हमारे हृदयों को आनन्दित करती हैं और हमें आशा दिलाती हैं कि हम जीवन का डट कर सामना करने के योग्य हैं। परन्तु इन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण और इन के बिना भी अपनी सत्ता को स्थिर रखने में सशक्त हमारी यह भावना है जो हमें बताती है कि किस मात्रा में हम शक्ति का प्रयोग करने में समर्थ हैं।"

दूसरे शब्दों में यह एक ऐसी सुदृढ़ और सुव्यवस्थित इच्छा के अस्तित्व का ज्ञान है जो अधःपतन के गर्त में गिरे हुए पुरुष को भी पुनः उठने, संसार के साथ भिड़ने और उसको जीतने के योग्य बना देती है।

"जो मनुष्य ऐसा कोई प्रयत्न नहीं करता", उसी लेखक के कथनानुसार, "वह केवल छाया-पुरुष है; पर जो यथाशक्ति उन्नति के शिखर पर पहुँचने का प्रयास करता है, सच्चा शूर है।"

जीवन का खेल, विशेषतया आजकल, कोई बच्चों का खेल नहीं। यह तो ऐसे वीर व्यक्तियों का खेल है जो दृढ़तापूर्वक डट कर संसार का सामना कर सकते हों, जिनके हृदय विकम्पित न हों और जो अपने मस्तक को ऊँचा रखने की क्षमता रखते हों।

मनुष्य होने के नाते हमारी उपयोगिता कितनी है, इसका अनुमान लगाने का मान-दण्ड वही पदार्थ है जो हमारी इच्छा-शक्ति का मान-दण्ड है, और वह पदार्थ है हमारे प्रयत्न का परिमाण।

ससार वैसा है जैसा हम उसे बनाते हैं। जीवन वैसा है जैसा हम उसे अपनाते हैं।

जब तक हम सुन्द इच्छा के कवच को धारण नहीं करते हम भयावह किनारे पर विचरण करते हैं।

अकेली इच्छा शक्ति ही सफलता के पथ को बना सकती है। इसे सुदृढ बनाने का प्रयत्न परमोपयोगी है।

भविष्य की ओर !

एक अशक्त पुरुष की सामान्य विशेषता अतीत के विचारों मे निमग्न रहने की अनर्थकारी प्रवृत्ति है।

कठिनाइयों का सामना सभी को करना पडता है। भूलें हम सब से हो जाया करती हैं। व्यापार में हानि, उपायों की निष्फलता, सभी के भाग्य में यही कुछ होता है। अशक्त पुरुष इनके भार के नीचे दब जाता है। सशक्त पुरुष मुसकराता है—कदाचित् कुछ दुःख से—और आगे बढ जाता है।

दोनों में अन्तर क्या है ? केवल यही कि अशक्त पुरुष की आखें अतीत की ओर लगी रहती हैं और वह अपने मन को व्यर्थ के सताप से दु:खित रखता है।

सशक्त पुरुष की आखें भविष्य की ओर होती हैं और विचार अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति की ओर।

एक तो अपनी असफलताओं को असफलतायें मान कर उन पर आसू बहाता रहता है, दूसरा उन को नए तथा अमूल्य अनुभव समझता है जो कि व्यावहारिक ज्ञान को समृद्ध करके अन्त में उस की मनोकामना को पूरा करने मे सहायक सिद्ध होंगे।

असंयत विचार इच्छा शक्ति का घातक शत्रु है। सोचो

अवश्य, परन्तु भविष्य को समुज्ज्वल बनाने के लिए या कुछ रचना करने के लिए ही सोचना हितकर है।

अतीत की भूलों के दुःखप्रद चिन्तन से कुछ लाभ नहीं होता। "उत्तम समय तो अभी आना है," रावर्ट ब्राउनिंग ने अपने एक गीत में गाया है, "जीवन का यह अन्तिम काल जिस के लिये यह पूर्वावस्था बनाई गई"।

उन सब के लिए जो अपने आप को निर्बल शक्ति वाला अनुभव करते हैं और अपने आप को अपने वश मे करना चाहते हैं, यह एक तथ्यपूर्ण आदर्श वाक्य है।

वस्तुतः, इच्छा की शिक्षा के लिये प्रथम पाठ मानसिक शक्तियों के संतोलन को सीखना है— और इस बात की ओर ध्यान रखना है कि संतोलन के समय मन का झुकाव कुछ कुछ जीवन के आशावादी विचार-कोण की ओर हो।

इच्छा को वश मे रखने के लिये आधी लड़ाई आवश्यक कामों को करने के लिये नहीं बल्कि उनको न करने के विरुद्ध लड़ी जाती है।

कठिनाई आशावादी बनने के मार्ग में नहीं बल्कि अपने आप को निराशावादी बनने से रोकने के मार्ग मे उपस्थित होती है। सभी लोग प्रलोभन के आगे झुक सकते हैं; युद्ध तो झुकने का विरोध करने पर होता है।

'उत्तम समय तो अभी आना है'। इस वाक्य को स्मरण रक्खो और हृदय मत हारो।

दुख सुख सब कँह होत है, पौरुष तजहु न मीत।
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत॥

इच्छा का अभ्यास

स्वभाव बनाने की आवश्यकता पर इन लेखों में बहुत बार कहा जा चुका है। कहीं भी इसकी इतनी आवश्यकता नहीं जितनी कि इच्छा की शिक्षा में।

उन शारीरिक और मानसिक कामों को जो कि हम भूतकाल में कर चुके हैं, स्वतः दोहराने की प्रवृति को हम स्वभाव कह सकते हैं।

यदि हम किसी ऐसे काम को जिसके बारे में हमें पूर्ण ज्ञान है कि उसे न करना चाहिये अपने आप को निरंतर करते पाते हैं अथवा उसके विपरीत जो हमें करना चाहिये उसे नही करते पाते तो उसका कारण स्पष्ट है।

यदि तुम चाहो तो इसे निर्बल इच्छा कह लो; परन्तु सरलता से इसको अभ्यास का अभाव कहा जा सकता है।

किस प्रकार क्रिकेट का एक अप्रसिद्ध खिलाड़ी अपने आप को प्रसिद्ध खिलाड़ी बना लेता है? केवल अभ्यास से। वह तब तक सतत अभ्यास करता रहता है जब तक कि वह सीधे बैट से खेलने का स्वभाव नहीं बना लेता अथवा ठीक ढंग से गेंद को मारने की विधि नहीं जान लेता और आंख तथा कलाई को एक साथ काम करने का अभ्यस्त नहीं बना डालता।

उसकी सफलता का उत्तरदायित्व निरन्तर अभ्यास और सुदृढ़ विचार के अतिरिक्त और किसी वस्तु पर नहीं।

इच्छा-शक्ति की समस्या का हल भी इसी प्रकार करो। यदि आप को सुदृढ़ तथा मांसल शारीरिक पट्ठों की इच्छा होती है, आप उन से काम लेते हैं। यदि आप को सुदृढ़ इच्छा की चाह है तो इस

से भी काम लो और अभ्यास कराओ।

यदि तुम उत्साह-हीन हो कर यह विचार करते हो कि तुम अपनी इच्छा को सुदृढ बना लोगे तो यह पर्याप्त नहीं।

इस विषय पर विस्तार से सोचो। अपनी कठिनाइयों को तोलो। आपने क्या करना है इसका पूर्ण निश्चय कर के, दृढ़ता-पूर्वक उस को पूरा करने की इच्छा के साथ कार्यक्रम को आरम्भ कर दो।

इसके अतिरिक्त मंगलवार को भी इस के बारे में उतने ही गम्भीर बने रहो जितने कि तुम सोमवार को थे। अभ्यास की व्यवस्था सतत प्रयत्न की मांग करती है, यदि इस में सफल होने की इच्छा है।

अपने आपको यह जतलाना कभी मत भूलो कि तुम उन्नति कर रहे हो। इस प्रकार की सूचनाएं शक्तिशाली सहायक प्रमाणित होती हैं।

ठोस समस्या

आओ, इच्छा को शिक्षा देने के प्रश्न की गहराई को देखें। दूसरे शब्दों में, तुम्हारी विशेष समस्या क्या है?

क्योंकि इच्छा कोई ऐसा ठोस द्रव्य नहीं है जिसको उसी प्रकार व्यायाम कराया जा सकता हो या शिक्षित किया जा सकता हो जिस प्रकार किसी विशेष शारीरिक पट्ठे को व्यायाम कराया जा सकता है अथवा शिक्षा दी जा सकती है। यह तो अति सूक्ष्म मानसिक शक्तियों का संतोलन है; उन का उचित प्रयोग; मानसिक शक्तियोंका समीकरण।

इस पर विचार करो; अपने अन्तरात्मा के साथ एक आध

घण्टा शांतिपूर्वक व्यतीत करो और अपनी दुर्बलताओं को व्यक्त करने में तनिक भी मत झेंपो।

कहीं न कहीं एक या सम्भव है बहुत सी, ठोस समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

आप, सम्भव है, किसी स्वभाव को त्यागना चाहते हैं—यथा तम्बाकू पीने का स्वभाव। आप कदाचित् कोई विद्या सीखने की ओर लगना चाहते हैं परन्तु अपनी दुर्बलता के कारण आरम्भ करने के समय को पीछे डालते जा रहे हैं

जब मैं इच्छा को शिक्षित करने के विषय पर कुछ कहता हूं तो मेरा तात्पर्य ऐसी बातों की ओर ही होता है। क्योंकि यही समस्यायें हैं जो तुम्हारी शक्ति या असमर्थता को प्रकट करती हैं। इस लिए साधारण रूप में इच्छा-शक्ति को समुन्नत करने की चेष्टा में अपने समय को नष्ट मत करो।

अपनी किसी दुर्बलता पर मन को एकाग्र करो। यदि यह सिगरेट पीने का स्वभाव है तो इस बुरे स्वभाव के स्थान पर किसी अच्छे स्वभाव को लाने के कठिन प्रयत्न मे लग जाओ।

यथार्थ में, आत्म-संयम का स्वभाव बढ़ाने की चेष्टा करो। सदैव अपने निश्चित उद्देश्य को अपनी आंखों के सामने रक्खो। ऐसा मत कहो कि "मैं अपनी इच्छा को अवश्य सुदृढ़ बनाऊंगा"। इस के स्थान पर यह कहो, "मैं सिगरेट पीना अवश्य छोड़ दूंगा"।

सफलता प्राप्ति के लिए तुम निश्चित विचारकोण को बनाओ। तुम्हारा काम तम्बाकू को न पीने वाला बनना है, न कि उसको कुछ देर के लिए त्यागना।

भले ही आप इसे बाल की खाल उतारना कहें परन्तु इन

दोनों प्रकार के दृष्टिकोणों में महान अन्तर है।

सुदृढ़ इच्छा वाला व्यक्ति, तत्त्वतः, वह व्यक्ति है जो इस प्रकार के संग्रामों का सामना कर सकता है और उन को जीत सकता है। और प्रत्येकबार जब ऐसे संग्राम में जीत होती है इच्छा प्रचुर मात्रा में सुदृढ़ हो जाती है।

चौराहे

यदि तुम पिछले लेखों में देखो कि मैंने स्मरण-शक्ति के बारे में बारम्बार क्या कहा तो तुम पाओगे कि मैं आप को निरन्तर सोचने के लिए उभाड़ता रहा हूँ।

सोचना, एकाग्र होना, ध्यान लगाने का प्रयत्न करना, किसी विचार अथवा विचारों के तांते को बिना मन को भटकने दिए दृढ़ता से पकड़े रखना—यही स्मरण- शक्ति का रहस्य है।

इसी में ही आप इच्छा का रहस्य भी पायेंगे। अपनी दुर्बलता के परिणामों के फल को भोगते समय दुर्बल इच्छा वाला और अस्थिर-चित्त मनुष्य कितनी बार बहुधा यही कहता है कि 'मैंने सोचा नहीं था'।

यह कितना दुःखद और तुच्छ बहाना है। यदि तुमने 'सोचा नहीं था' तो उसका उचित उत्तर यही है, 'क्यों सोचा नहीं था'? क्यों? क्यों? क्यों?

विचार-शक्ति के अतिरिक्त कौन सी बात तुम्हें पशुओं से ऊपर उठाती है? सोचने, तर्क करने और निर्णय करने वाले मस्तिष्क को छोड़ कर और क्या वस्तु तुम्हें अन्य प्राणियों से पृथक् करती है?

यदि तुम सोचते नहीं, तुम मानसिक आलस्य के शिकार हो

और मानसिक आलस्य के लिए किसी तथ्यपूर्ण बहाने को अभी तक सुनना है।

सोचना तुम्हारा कर्तव्य है और तुम्हारा कर्तव्य यह भी है ठीक ढंग से सोचो। 'जब हम सर्वोच्च को देखेंगे तो हम अवश्य पहचानेंगे' यह कथन कदाचित् पूर्णतया सत्य न भी परन्तु यदि हम मानसिक और आचार सम्बन्धी उदासीनता बिलकुल खो नहीं गये तो सर्वोच्च हमारे में प्रत्युत्तरात्मक छ उत्पन्न करने में कभी भी असफल नहीं हो सकता।

'इच्छा का काम' निर्वाचन के अधीन है; बहुधा इसका श होना है इच्छा का दमन; इसकी मांग होती है पदार्थों के मूल्य भली भांति छान बीन; आत्म-विस्मरण और महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार की इसे अत्यावश्यकता है।

कोई भी मनुष्य अकेले अपने लिए ही जीवित नहीं सकता। प्रत्येक काम का प्रभाव किसी अन्य पर भी अवश्य पड़ता है।

परिणामों को स्पष्ट रूप में देख लेना ठीक निर्णय करने बड़ी सहायता देता है।

यदि तुम परिणाम को पहले देख सको तो मार्ग बाधारहि। जायगा।

देव-तुल्य पुरुष

मानव-यन्त्र की यह एक विलक्षणता है कि यह प्रतिवादों से परिपूर्ण है। उदाहरण के लिए दृष्टि को लो। प्रत्येक चक्षु-विद्या का स्वाभिमानी ज्ञाता मनुष्य की आंख की, यदि इसे यन्त्र-रचना का केवल एक भाग समझा जाय, बिना किसी संशय या शंका के निन्दा करेगा। यन्त्र-विषयक दृष्टिकोण से यह सर्व प्रकार से निन्दनीय है। किन्तु जब यह देखती है, इसको अपने काम को करने की क्षमता अलौकिक है। मानव यन्त्र के अन्य अधिक अस्पृश्य किन्तु समान रूप में प्रभावशाली गुणों की भी यही गति है। अविश्वसनीय सामर्थ्य के साथ साथ हम अविश्वसनीय दुर्बलता भी पाते हैं।

यह एक विचित्र असत्याभास है कि मन और मस्तिष्क जो कि भयावह विघ्न, बाधाओं पर विजयी होने, और जातियों के भाग्य का पथ-प्रदर्शक बनने या अपनी इच्छानुसार प्रकृति को अधिकार में लाने की क्षमता रखते हैं, बहुधा बिलकुल तुच्छ प्रलोभनों का सामना करने में अपने आप को अशक्त पाते हैं।

दुर्बलता कोई ऐसी वस्तु नहीं जिस के लिए हमें लज्जित होने की आवश्यकता हो। किन्तु इस दुर्बलता को अपने पर विजयी होने देने से बढ़ कर और कोई लज्जाजनक बात नहीं।

हमारी रचना के अन्तर्गत अपरिमित संभावनाएं हैं। हमारे अशक्त या सशक्त होने का सम्बन्ध केवल वहीं तक है जहां तक हम अपनी परिस्थितियों को अपने वश में ले आते हैं अथवा उन्हें अपना स्वामी बनने देते हैं।

एक शक्तिशाली पुरुष का यह कोई आवश्यक लक्षण नहीं कि

वह प्रत्येक पदार्थ या पुरुष को अपने पांओं तले रौंदता चला जाय।

बहुधा यह लक्षण तो दुराग्रह-पूर्ण और विवेकशून्य, स्वार्थी और हृदय-हीन, निष्ठुर अत्याचारी का होता है। सीज़र, नैपोलियन और मुसोलिनी इत्यादि की गणना प्लेटो, सुकरात और ईसामसीह के साथ कभी नहीं होती।

यह कथन कि मनुष्य देवताओं से कुछ ही कम है इतना विस्मयोत्पादक नहीं क्योंकि मनुष्य विचार सकता है और निर्वाचन कर सकता है। मनुष्य अपने भाग्य का विधाता स्वयं है। वह समस्त संसार को अपनी इच्छाओं के अनुकूल बना सकता है।

किन्तु ऐसा वह तभी कर सकता है जब उसे यह सुबोध ज्ञान हो जाय कि उस की इच्छा तलवार भी है और ढाल भी।

मिथ्याभिमान

यदि कोई सूक्ष्म यन्त्र बिगड़ जाय तो व्यावहारिक ज्ञान दोष को ढूंढ निकालने के लिये यन्त्र-परीक्षा की अनुमति देता है।

व्यावहारिक ज्ञान यह भी बतलाता है कि यन्त्रपरीक्षा किसी ऐसे पुरुष से करवाई जाय जो इस काम का विशेषज्ञ हो।

यह बड़ी विस्मित करने वाली बात है कि बहुत कम लोग अपने मन के सूक्ष्म यन्त्र के लिये व्यावहारिक ज्ञान के उपायों को प्रयोग में लाने के बारे में सोचते हैं।

क्रोध, उद्विग्नता अनिर्णय और अस्वस्थता ये सब बातें और इन के अतिरिक्त और भी दुर्गुण मानवयन्त्र के अस्थायी अवरोध के चिन्ह हैं।

बहुधा ऐसी अवस्थाओं में कष्ट का कारण कोई एक विचार

या विचारों का तांता होता है जो पहियों की गति को मैल बन कर रोकता है।

प्रायः ऐसे समय मानसिक अध्ययन लाभप्रद सिद्ध होता है। कई बार उदासीनता को यह आनन्द में परिवर्तित कर देता है।

कभी कभी ऐसी आत्म-परीक्षा--थोड़ी मात्रा में--उत्तम होती है।

मिथ्याभिमान प्रायः मानव यन्त्र में मैल का काम करता है--वह मिथ्याभिमान जो कि तुम्हें अपनी भूल स्वीकार करने से रोकता है, यद्यपि तुम जानते हो कि दोष तुम्हारा है। परिणाम यह निकलता है कि तुम चिन्ताग्रस्त हो जाते हो। कल्पित कष्ट और पीड़ा के हेतु यथार्थ दिखाई देने लग जाते हैं। तुम इस संसार को विषादपूर्ण समझने लग जाते हो। और तुम अपने आप को तथा अन्य व्यक्तियों को पूर्णतया दुःखी बना देते हो।

शक्तिशाली पुरुष का यह एक अचूक चिन्ह है कि वह अपनी भूल को मानने में कभी नहीं डरता। उस में इतना स्वाभिमान होता है कि वह अपने आपको धोखा देने की चेष्टा नहीं करता; अन्य लोगों के प्रति इतना समादर होता है कि वह भ्रम को टिकने का अवसर ही नहीं देता, जब कि एक शब्द द्वारा इस का भली भांति समाधान हो सकता हो।

अगली बार जब काम बिगड़ जाय और संसार अन्धकारमय दिखाई देने लगे तो देखो कि कहीं दोष तुम्हारा तो नहीं।

इतने शक्तिशाली बनो कि तुम अपने दोष को स्वीकार कर सको।

———

दुर्गम पथ

अपने उन पाठकों को जो कार्यक्षमता की प्राप्ति के लिये इन लेखों में वर्णित अनेक उपायों और संकेतों का अभ्यास करने की चेष्टा करते हों, मैं एक दो शब्द चेतावनी और उपदेश के कहना चाहता हूँ।

यह आशा कभी मत रक्खो कि एकाएक तुम सफलता पा जाओगे। साथ ही निराश और विस्मित भी न होना यदि कुछ घंटों अथवा कुछ दिनों के अभ्यास के पश्चात् तुम को कोई विशेष उन्नति करने में सफलता नहीं मिली।

लगभग प्रत्येक बार एक बुरे स्वभाव को जड़से उखाड़कर उस के स्थान पर एक अच्छे स्वभाव को स्थापित करना पड़ता है।

उदाहरणतः आप अस्थिर-चित्तता को इच्छा-शक्ति और सुदृढ़ निश्चय द्वारा चौबीस घण्टों में नहीं बदल सकते।

निरन्तर कई वर्षों में आपने आगापीछा करने, सन्देह करने और चिन्ता करने का स्वभाव बनाया है; और अब इस की जड़ें जम गई हैं।

भूल मत करो। इस स्वभाव को निर्मूल करने के लिये घोर संग्राम करना होगा। आत्म-विजय कदापि सरल नहीं।

और तुम्हारा पहला कर्तव्य उन शक्तियों की सामर्थ्य को जांचना है, जो तुम्हारे विरुद्ध घेरा डाले पड़ी हैं ताकि, उन पर विजय पाने के लिए तुम्हारी चेष्टायें भी पर्याप्त शक्तिशाली हों। यदि कुछ मासों के उपरान्त सतत अभ्यास करने पर तुम्हें कुछ उन्नति होती दृष्टिगोचर हो तो, मुझ पर विश्वास करो, तुम्हें अपने आप को भली भांति सामना करने के कारण धन्यवाद देने का पूर्ण अधिकार होगा।

आत्म-संयम के लिये पग पग पर घोर संग्राम करना पड़ता है, एक लम्बा संग्राम जिस में विजय केवल धैर्य, अभ्यास और निरंतर परिश्रम से ही प्राप्त की जा सकती है।

अतीव प्रबल आक्रमण, अपने उद्देश्य में अटल विश्वास, और यह सच्ची निष्ठा कि विजय अन्त में तुम्हारी होगी—विजय प्राप्ति का संशय रहित उपाय है।

और मेरे विचार में अन्तिम का होना अत्यावश्यक है।

क्योंकि सच्ची निष्ठा अभी भी अभूतपूर्व कार्य करने की क्षमता रखती है, यदि इसे विधिपूर्वक प्रयोग में लाया जाय।

उज्ज्वल-पथ

समय समय पर मैंने कई ऐसी मानसिक शक्तियों की ओर संकेत किया है, जिनका उचित प्रयोग उत्तेजना और शक्ति के स्रोत का काम देता है।

क्या यह बात कभी भी आप के मस्तिष्क मे आई है कि उचित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कल्पना कितनी सहायक सिद्ध हो सकती है ?

हम सब कई ऐसे लोगों को भली प्रकार से जानते हैं, जिनके बारे में बिना किसी अत्युक्ति के यह कहा जा सकता है कि 'उन मे कल्पना-शक्ति का बिलकुल अभाव है'। साधारणतया इस में उनके अपयश की कोई बात नहीं।

प्राय: इस अभाव के साथ २ उनमे सुजनता और शान्त प्रकृति भी विद्यमान् होती है; और साथ ही ऐसी शान्ति जिसे न दुःख और न सुख सहज मे नष्ट कर सकते हैं।

किन्तु आपको बड़ी कठिनता से कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जिस

में कल्पना करने की शक्ति न हो और यह ऊंचा उठा हो। वह सदा परिमित स्थान के भीतर ही रहता है। वह लकीर का फकीर बन जाता है और अपने स्थान पर ही पड़ा रहने में सन्तुष्ट होता है।

"जहां दृष्टि नहीं है," एक प्रचीन लेखक ने कहा है, "लोग नाश को प्राप्त हो जाते हैं"। और कल्पनाशक्ति के बिना मनुष्य की मानसिक और आत्मिक मृत्यु हो जाती है।

निर्जीव कल्पनाशक्ति का अर्थ है निर्जीव इच्छा, निर्जीव महत्त्वाकांक्षा और प्रयत्न तथा साहस की मृत्यु।

किन्तु कल्पनाशक्ति का प्रयोग किसी निश्चित तथा रचनात्मक कार्य की पूर्ति के लिये ही करना चाहिये। कल्पना करो कि किस बात की संभावना है; कल्पना करो जो तुम बनना चाहते हो।

अपनी कल्पनाशक्ति को, कठिन तथा अपरिचित पथ को आलोकित करने के लिये, मशाल की न्याईं प्रयोग में लाओ। कई लोग इसे उन अड़चनों और संकटों का चित्र खींचने के लिये प्रयोग में लाते हैं जिन का उन्हें कदाचित् सामना करना पड़े।

ऐसा करना एक अमूल्य शक्ति का दुरुपयोग करना है। यह तो उसको मार्ग की बाधा बनाना है, जिसे हम संचालक शक्ति का रूप दे सकते थे।

न ही कल्पनाशक्ति को इतनी बढ़ने देना चाहिये कि यह केवल दिन में भी स्वप्न देखने में बदल जाय। ऐसा करना तो इसे उस मानसिक शक्ति को खाली करने की आज्ञा देने के समान होगा जिस का इस से कहीं अधिक सदुपयोग किया जा सकता था। कोई भी महान् व्यक्ति कल्पनाशक्ति के प्रयोग के बिना बड़ा नहीं बना। यह बात स्मरण रक्खो और लकीर के फकीर मत बनो।

दिन के स्वप्न

पिछले लेख में मैंने परिस्फुट कल्पनाशक्ति को बढ़ाने की आवश्यकता पर कुछ प्रकाश डाला था। आओ इस विषय पर कुछ और विचार करें।

जिसे हम 'दिन में स्वप्न देखना' कहते हैं वह भी इसी का एक रूप है। समय समय पर प्रत्येक पुरुष दिन में स्वप्न देखता है; कई तो इस के इस सीमा तक अभ्यस्त हो जाते हैं कि वह व्यावहारिकता से दूर, उद्विग्न और यथार्थता के सम्पर्क से परे हो जाते हैं; कई केवल कभी २ इस का रसास्वादन करते हैं।

परन्तु मुझे संदेह है कि संसार मे कोई ऐसा भी व्यक्ति है जो कभी भी इस शान्तिप्रदायक और आनन्दवर्धक कार्य मे संलग्न न हुआ हो।

मन की अन्य क्रियाओं की भांति इस की उपयोगिता इस के प्रयोग—अर्थात् किस भांति इस शक्ति से काम लिया जाता है—पर पूर्णतया अवलम्बित है।

निस्संदेह दिन में स्वप्न देखना या तो ईश्वर-प्रेरणा हो सकती है या एक दुर्व्यसन। प्रायः जैसा कि देखा जाता है, इस से लाभ और हानि का आधार यह बात है कि तुम इसे अपना सेवक बना लेते हो या अपना स्वामी बनने देते हो।

बैठ जाना और उद्देश्य-हीन व्यक्ति की न्याईं उन व्यर्थ विचारों के पीछे पड़ जाना, जो निश्चय और विचार-पूर्वक मानसिक विश्राम और विनोद के लिए प्रयोग में नहीं लाये जाते, दिन में स्वप्न देखने की क्रिया का औषधि के समान प्रयोग है। परन्तु इस प्रकार भी दिवा-स्वप्न अपना महत्व रखते हैं, यदि उनका

व्यवहार बुद्धिता से न्यूनातिन्यून हो। किन्तु इस को स्वभाव में परिणत मत होने दो।

दिन में स्वप्न देखने की क्रिया वस्तुतः तभी उपयोगी सिद्ध होती है जब कोई व्यक्ति बैठ कर ध्यानपूर्वक इस बात की कल्पना करता है कि क्या होने की संभावना है; जब अपने भूतकाल की आलोचना करता है, वर्तमान पर विचार करता है और भविष्य का निर्माण करता है।

वे ऐसे ही स्वप्न और कल्पनाएं थी जिन्होंने कोलम्बस को अमरीका पहुंचाया, न्यूटन को पृथ्वी की आकर्षणशक्ति का रहस्य बताया और उन महापुरुषों को जो इतिहास में अपना नाम अमिट अक्षरों में लिखा गये हैं, प्रेरित किया।

ऐसे स्वप्नों से मत डरो। वे काम की उत्तेजना देने वाले और बड़े २ कामों की सफलता के साधन बनाये जा सकते हैं। परन्तु उन्हें प्रस्तावना से अधिक महत्व कभी मत दो। जिस काम के लिये वे प्रेरित करते हैं, वास्तविक महत्व तो उस का है।

—:o:—

सचेत रहना !

मनुष्य के मन की गति के विषय में रुचि रखने वालों के लिए हम एक स्मरणीय पाठ प्रस्तुत कर चुके हैं।

अपने चारों ओर हमने कई निर्विवाद सचरित पुरुषों को, सद्भावनाओं को रखते हुए भी, अपने आप को, और अन्य पुरुषों को धोखा देते देखा है। सचाई इस बात में है कि वे तर्क और विश्वास जिन से हम उनका समर्थन करते हैं, बहुधा विवेक-शून्य होते हैं।

विवेकपूर्ण और न्यायोचित विचार, तथ्यों की छान बीन और पक्षपात-रहित मन से प्रमाणों को तोलना—ये कुछ ऐसी कठिन बातें हैं जो एक साधारण मनुष्य की पहुँच के बाहिर हैं।

अपने आप को धोखा देना बहुत सुगम है। "अपना निर्णय दो," एक पुराने न्यायाधीश ने एक नये न्यायाधीश को कहा, "संभवतः यह ठीक होगा। परन्तु उसके लिए अपने कारण मत दो, क्योंकि वे निश्चय ही लगभग अशुद्ध और दोषपूर्ण होंगे।"

हम में से प्रत्येक अपने आचरण और अपने सिद्धान्तों के सुव्यक्त पारस्परिक विरोध का समाधान करने के लिए और अपने कृत-कर्म को उचित ठहराने के हेतु कई सुन्दर और अकाट्य युक्तियों को प्रस्तुत कर देगा। परन्तु प्रायः सदैव ये युक्तियां काम करने के पश्चात् सोची जाती हैं; केवल अपने आप को धोखा देने के लिए और अपने काम को न्यायानुसार ठहराने के लिए।

हम अच्छा ही करेंगे यदि हम निष्पक्ष भाव से तथ्यों को विचारने की चेष्टा करना एक सुदृढ़ अभ्यास बना लें। मानसिक निष्कपटता और नियंत्रित मन एक ही वस्तु के दो स्वरूप हैं।

कितनी वार हम एक व्यक्ति के लिए ये शब्द सुन पाते हैं कि उसका निर्णय सदा सत्य होता है! ऐसा पुरुष अपने सहकारियों द्वारा सदा प्रशंसा प्राप्त करता है और उनका विश्वासपात्र होता है।

हम सब की प्रवृत्ति पूर्वनिर्मित विचारों को ग्रहण करने की ओर होती है। परन्तु हम सब को स्वेच्छापूर्वक अपने लिए सोचने का कष्ट उठाना चाहिए।

प्रत्येक की जीवन घटनायें निरीक्षण के लिए सदा सम्मुख होती हैं।

मन के द्वार को खुला रक्खो। निरीक्षण करो, तोलो और विचार करो। और अपने निर्णय तथ्यों के आधार पर बनाओ।

यदि तुम अपने आप को धोखा देना छोड़ दोगे तो अन्य पुरुष भी तुम को धोखा देना कठिन अनुभव करेंगे।

संकट!

एक विचारकोण से ये सभी लेख कार्यक्षमता और सफलता के मार्ग के संकेत-स्तंभ समझे जाने चाहिए।

परन्तु आज मैं एक भिन्न प्रकार का संकेत-स्तंभ खड़ा करने की आज्ञा चाहता हूं। मुझे संकट-सूचक स्तंभ खड़ा करने दो।

मनुष्य की यह एक विचित्र विलक्षणता है कि सफलता की प्राप्ति प्रायः उसे निराशा और विनाश की ओर ले जाती है।

उदाहरण के लिए राजनीतिज्ञों की ओर देखो। कितनी बार हम देखते हैं कि एक व्यक्ति जो कि विरोधी पक्ष में रहते हुए होनहार, सबल और प्रभावशाली था, राज्य की बागडोर संभालने पर तेजहीन, शून्य बन जाता है।

उसके दृष्टान्त से हमें शीघ्र ही शिक्षा मिल जाती है क्योंकि राज्य-सिंहासन के चहुं ओर मंडराने वाली प्रचंड ज्योति उसके सभी गुणों को कुछ न कुछ मन्द कर देती है। प्रायः इसकी उपमा हम अपने जीवनों में नहीं देख पाते।

सफलता एक ऐसी मादक मदिरा है जो बहुधा उत्साह के लिए एक चेतना शून्य करने वाली औषधि का काम करती है।

संग्राम ही सब कुछ है। स्वभावतः मनुष्य एक कलह-प्रिय पशु है, जो सदैव लड़ाई के लिए लालायित रहता है, चाहे यह उसके अपने स्वार्थ के लिए हो अथवा किसी अन्य के हितार्थ।

कलह-प्रियता एक आन्तरिक प्रवृत्ति है; और इस पर अवलम्बित प्रत्येक प्रयत्न दोहरा बलशाली होता है। इसके पीछे शक्ति का अथाह भण्डार होता है।

किन्तु, मन से या शरीर से, हम निश्चेष्ट नहीं रह सकते। यदि हम आगे नहीं बढ़ेंगे, हम पीछे फिसल जायंगे। प्रकृति के अन्य पदार्थों की भांति हमें सदा गतिशील रहना चाहिए।

यही सफलता के मार्ग का संकट-सूचक स्तंभ है। हम समझते हैं कि सफलता का अर्थ है विश्राम, उद्देश्य की पूर्ति, निश्चित अन्त।

परन्तु ऐसी कोई बात नहीं। सफलतापूर्वक मनोरथ के सिद्ध हो जाने पर हमें अपनी शक्तियों का मुख किसी और दिशा की ओर कर देना चाहिए।

यदि युद्ध को निरन्तर चालू न रक्खा जाय तो इस का फल निकलेगा कुछ समय के लिए उन्नति की गति में बाधा और तदुपरान्त अधःपतन।

सफलता तुम्हारे लिए आलस्य की जननी न बन जाय। प्रायः प्रत्येक होनहार पुरुष की असफलता का रहस्य यही है।

चौकन्ने रहो और चारों ओर ध्यान रक्खो!

अमरीका के लोग एक वाक्य-खण्ड का, जिसके द्वारा वह किसी व्यक्ति को 'सामाजिक जीव' कह कर पुकारते हैं, बहुत प्रयोग करते हैं। इससे उनका अभिप्राय एक ऐसा व्यक्ति होता है जो किसी भी समाज में बिना किसी कष्ट के हिल-मिल जाता है और जिस किसी के सम्पर्क में आता है उसे ही अपना घनिष्ठ मित्र बना लेता है।

ऐसे मनुष्य के बारे में कोई विशेष रहस्य नहीं होता। मैं आप को विश्वास दिलाता हूं कि इस में कुछ अंश तो व्यक्तिगत विलक्षणता होती है परन्तु अधिकांश में यह समयानुकूल व्यवस्था करने का प्रश्न है।

यदि हम कुछ और गंभीरता से विचार करें तो हमें विदित हो जायगा कि इस में अन्य व्यक्ति के विचारकोण को समझने का भी प्रश्न था।

मानव-यन्त्र की एक विशिष्ट विलक्षणता इसकी परिस्थितियों और आकस्मिक आपत्तियों के अनुसार व्यवस्था करने की अपरिमित शक्ति है।

यह एक ऐसी शक्ति है जिसका ज्ञान होना हितकारी है और हमारे लिए उचित है कि हम इसे शिक्षित करें और प्रयोग में लायें।

यदि हम अपने विचारों को अन्तस्थ बना लें और उनका मुख सदा भीतर की ओर मोड़े रक्खें तो हमारे लिए समयानुसार अपनी व्यवस्था करना कठिन हो जायगा। यह तो हम तभी कर सकते हैं यदि हम चौकन्ने रहें और निरन्तर परिस्थितियों का ध्यान रख कर सोचें, समझें।

तुम्हारा स्वार्थ-प्रधान पुरुष जिसका, प्रत्येक नई परिस्थिति का सामना करने पर, एक मात्र यही प्रश्न होता है कि 'इस का मुझ पर कैसा प्रभाव पड़ेगा' ? कभी भी 'सामाजिक जीव' नहीं बन सकता।

वह अपने तथा अन्य लोगों के बीच स्वार्थ की दीवार खड़ी कर लेता है। वह समझता है कि उसके दृष्टिकोण के अतिरिक्त और कोई विचारकोण संभव ही नहीं।

यह कल्पित अन्यायों के बारे में चिन्ताग्रस्त रहता है, शंका-युक्त हो जाता है और आत्म-ग्लानि से अभिभूत दिखाई देता है।

इसकी औषधि है अन्य लोगों के बारे में रुचि बढ़ाना, उनके विचारों को मन लगा कर सुनना, और यह समझना कि वे लोग भी इसी प्रकार तुम्हारे विषय में रुचि रखते हैं।

यह भी स्मरण रहे कि जो बात तुम्हें महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है दूसरे के लिए निष्प्रयोजन हो सकती है। प्रत्येक वस्तु को उसके स्वरूपानुसार देखने की योग्यता प्राप्त करो। दूसरे के दृष्टिकोण से भी देखना सीखो। संसार में केवल तुम ही नहीं रहते।

क्षुद्र पुरुष

इस भूमण्डल पर नीचातिनीच और अतीव साधारण जीवन छोटे छोटे अति सूक्ष्म जीव जन्तुओं का है। ऐसा जन्तु पूर्णतया अपने आप पर निर्भर रहता है और एकाई की भांति पूर्ण होता है। उसे न तो अपने अड़ोस पड़ोस की कोई चिन्ता रहती है और न उनसे कुछ पाने की अभिलाषा।

यह सूक्ष्म जन्तु अंग्रेजी में अमीबा कहलाता है और पदार्थ-विज्ञान के अनुसार निश्चय ही जीवित होता है।

यह अपनी प्रकार का एक ठीक काम करने वाला यन्त्र है। किन्तु इस की अवस्था के लिये 'जीवन' की अपेक्षा 'अस्तित्व' उपयुक्त नाम है।

मानव यन्त्र को, जो ठीक उसी प्रकार काम करता है, यदि समुन्नत करना हो तो इस 'अस्तित्व' की अवस्था से निकाल कर कुछ अधिक बनाना होगा। मनुष्य को यदि संभावना से ऊपर उठना है तो उसे जीवन को सार्थक करना होगा।

यथार्थ में उसके लिये यह अत्यावश्यक है कि अन्य लोगों के जीवनों की छाया तथा उन के विचारों का प्रतिफल उसे भी मिले।

यदि अमीबा की भांति वह किसी ऐसे संसार में रहता है जो उस के अपने ज्ञान से ही परिवेष्टित है—अपने साथियों के आदान-प्रदान से दूर—वह अपने मानसिक और आत्मिक बल को अपरिपक्व रहने देता है।

तौभी उसका व्यक्तित्व बना रहेगा, एक व्यक्तिगत चेतना जो कि केवल उसकी ही होगी; पर वह बढ़ न सकेगी। इस प्रकार के सभी स्वार्थ-प्रधान और आत्मनिर्भर पुरुष अपूर्व ढंग से समान होते हैं।

वे उतने ही अभिन्न और अरुचिकर होते हैं जितने कि पंक्तिबद्ध छोटे छोटे कीड़े।

अन्य लोगों के सम्पर्क में आना, विचारों का विनिमय करना और जैसा प्रायः कहा जाता है कन्धों के साथ कन्धा भिड़ा कर चलना—यही वे बातें हैं जो मनुष्य की उस विशेषता और यथार्थ व्यक्तित्व को प्रकट करती हैं तथा परिपुष्ट करती हैं जिन के कारण वह अन्य व्यक्तियों से पृथक् अपनी सत्ता स्थापित कर लेता है।

और केवल यह पारस्परिक संसर्ग ही उस शक्ति को समुन्नत कर सकता है जो लाखों लोगों को एक धर्म, एक आन्दोलन, एक मूर्तिमान विचार से सम्बद्ध कर देती है; जो इतिहास को बदल सकती है और संसार का चित्र परिवर्तित कर सकती है।

"अकेला अंग्रेज एक मूर्ख है," एक आधुनिक लेखक ने कहा है, "दो सामना करने के योग्य हैं, तीन मिलकर एक बड़ी जाति हैं।"

इस छोटे से तथ्यपूर्ण वाक्य में उस पुरुष के लिये जो शांतिपूर्वक अमीबा का अनुकरण करने में सन्तुष्ट है, एक बड़ी शिक्षा निहित है।

शारीरिक आधार

स्मरण रहे कि संसार की सारी चेष्टा और शिक्षा मन को विशिष्ट नहीं बना सकती जब तक शरीर की ओर उचित ध्यान न दिया जाय। वस्तुतः शरीर ही—नाड़ियों, पट्ठों, अंतड़ियों और अन्य सूक्ष्म सहकारियों के साथ—वह साधन है जिस के द्वारा मन काम करता है। यदि साधन ही दोषपूर्ण हो, परिणाम—जहां तक उन का मन से सम्बन्ध है—अवश्यमेव अनिवार्य रूप से बुरे निकलेंगे।

उदाहरण के लिये, जो हमें निर्बल इच्छा प्रतीत होती है उस का वास्तविक कारण शारीरिक अस्वस्थता हो सकती है। एकाम न हो सकने का कारण प्रायः दोषपूर्ण दृष्टि हो सकती है।

अतः यह परमावश्यक है कि शरीर को भी उतनी ही सावधानी और वैज्ञानिक ढंग से शिक्षित किया जाय जितनी उत्तमता से हम मन को शिक्षित करते हैं।

पर्याप्त मात्रा में आहार, गहरी नींद—परन्तु प्रचुर—और उचित परिमाण में व्यायाम, 'स्वस्थ शरीर मे स्वस्थ मन' के आदर्श की प्राप्ति के लिए अत्यावश्यक हैं। जागने पर तत्काल ही खाट पर से उठ बैठना, तदुपरान्त कुछ मिनटों के लिये स्फूर्तिप्रद शारीरिक व्यायाम करना, शरीर को ऐसी शक्ति और स्वास्थ्य प्रदान करते हैं कि उनका मन पर हितकर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता।

इन प्रातःकालीन सरल अभ्यासों से, यदि रीत्यानुसार किये जायें, मन भी शिक्षित हो जायगा।

उदाहरण के लिये, वे सीधा इच्छाशक्ति को बढ़ाते हैं। कई दिन ऐसे आएंगे जब कुछ समय और बिस्तरे पर पड़े रहना अतीव

सुखकारी प्रतीत होगा। पर प्रत्येक बार जब तुम इस प्रलोभन का सामना करने में सफल रहोगे तुम अपनी इच्छा को दृढ़ बनाने में अपूर्व उन्नति करोगे।

सर्वोपरि, तुम उस मानसिक शिक्षा के लिए जिस का तुम प्रयत्न करोगे, अत्यावश्यक शारीरिक नींव रख रहे होगे।

'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'

भय

स्थूल रूप में यह कहा जा सकता है कि हमारा मानसिक जीवन और विशेष प्रकार से हमारी विचार उत्पादक शक्तियां हमें अपने आचरण को परिस्थितियों के अनुसार व्यवस्था करने में समर्थ बनाती हैं। वह पुरुष जो अपने मस्तिष्क का ठीक प्रयोग करता है, और जिसने अपने विचारों को उचित दिशा की ओर अग्रसर करना सीख लिया है, कठिनाइयों अथवा आकस्मिक आपत्तियों के आपड़ने पर बचने का मार्ग ढूंढ निकालने के प्रयत्न में इधर उधर भटकने की अपेक्षा बुद्धिमत्ता से आचरण करता है।

किन्तु विचार, मानवयन्त्र के अन्य कामों की भांति, कई बार हमें कुपथ की ओर ले जा सकता है, यदि हम इसे अपने वश में न रक्खें।

जिस प्रकार रक्त हमें स्वस्थ भी रख सकता है और साथ ही साथ रोग का माध्यम भी बन सकता है उसी प्रकार हमारा विचार हितकारी भी सिद्ध हो सकता है और भारी भूलों का कारण भी।

इसका पथ निर्देश करने में जिस सीमा तक हमारा अधिकार है, उसी पर इसकी उपयोगिता का सारा आधार है।

जब विचार अकारण भय की ओर मुख कर लेता है तो यह

निरर्थक काम करने में लग जाता है।

यह एक अनर्थकारी अड़चन, चिन्ता और दुःख का स्रोत बन जाता है और शक्ति तथा उत्साह को निरंतर खाली करने वाली नाली का रूप धारण कर लेता है।

पूर्णतया कल्पित और आधारहीन भय बहुधा सर्वसाधारण द्वारा अनुभव किया जाता है। परन्तु कष्टकर बात बीच में यह होती है कि एक दर्शक जिसे तुच्छ समझता है उसी को भयातुर पुरुष बिलकुल सच मानता है।

यदि तुम को कोई भय सतत सता रहा है तो एक काम करो। इसका वीरता पूर्वक सामना करो, इसको विभाजित करो, इसकी जड़ों को उखाड़ कर रखदो और देखो कि वास्तव में भय का कोई कारण भी है या नहीं।

बहुत कम भय यथार्थ तथ्य की तेज रोशनी के नीचे टिके रह सकते हैं।

किन्तु तुम्हें अपने साथ निष्कपट होना पड़ेगा, अपनी असत्यता को अपनाना पड़ेगा और अपनी भीरुता के लिये अपनी हंसी उड़ाने का साहस करना होगा।

सत्य जानो कि भय के अस्थिपिञ्जर को मासयुक्त करने का एकमात्र उपाय भयभीत होना ही है।

साहस

चरित्र-निर्माण के विषय पर लिखते हुए मैंने कहा था कि 'हम निपुणता पूर्वक काम करने से ही निपुण बन सकते हैं'। आओ हम भय के विषय में कुछ और विचार करें और इस सिद्धांत को प्रयोग में लायें।

यदि उत्साहपूर्वक यह कहने से कि "मैं भयभीत नहीं हूं। मुझे कोई भय नहीं सता रहा" भय दूर किए जा सकते तो कोई समस्या ही उत्पन्न न होती। पर हां, यदि इस संकेत को बारम्बार दोहराया जाय, इस पर विश्वास किया जाय तो निश्चय ही अधिकांश भय दूर हो सकते हैं; परन्तु सभी नहीं।

भय को जीतने का निश्चित उपाय है, साहस को बढ़ाना।

यह आशावादी और निराशावादी विचारकों का आपस का अन्तर है।

वह निराशावादी ही होता है जो डरता है और सदा पिछड़ता जाता है। आशावादी सदैव आशा बनाये रखता है और निर्भय हो कर आगे बढ़ता जाता है।

कई लोग अपनी योग्यता तथा शक्तियों का सदा कम दाम लगाते हैं और संसार के लिये अपनी उपयोगिता को कम महत्त्व देते हैं। वे बहुत कम श्रेय अपने आप को देने का साहस कर पाते हैं।

यह आत्म-अवज्ञा ही प्रायः अनुचित उद्वेग, भीरुता तथा भय को उभारती है। एक सम्प्रदाय जो बड़े अभिमान के साथ इस आदर्श वाक्य का 'कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं क्या कुछ नहीं कर सकता ?' प्रदर्शन करता है, भय के प्रश्न की जड तक पहुंच गया है। और उसने निस्संदेह साहस के रहस्य का उद्घाटन कर दिया है।

सच्चा साहस (विदित अथवा कल्पित विघ्न बाधाओं के सामने आने पर भी आगे बढ़ने की क्षमता) इच्छाशक्ति, उद्देश्य और निष्कपटता की मांग करता है।

ऐसा कोई भी व्यक्ति पूर्ण साहसी नहीं हो सकता जो कि

कपटी हो। और अपने आप के प्रति निष्कपट होना उतना ही आवश्यक है जितना कि औरों के प्रति।

अपने आप पर विश्वास करो, उस उद्देश्य में विश्वास रक्खो जो तुम्हारे विचार तथा काम को उत्तेजना दे रहा है, उज्ज्वल भविष्य में विश्वास रक्खो और आने वाली विपत्तियों की ओर कम ध्यान दो।

यदि अपने मन को रचनात्मक तथा आशावादी विचारविन्दु के साथ एक लय कर दोगे तो तुम साहस को भली भांति समुन्नत कर लोगे।

ज्यों २ साहस बढेगा, त्यों २ भय लुप्त होता जायगा।

भय का सामना करना

मेरे भय विषयक विचारों के बारे मे एक पत्र-लेखिका लिखती है, "कई सप्ताहों से केवल उस भय के कारण जो मुझे होगा मैंने एक दांत को निकलवाना स्थगित किया हुआ है। मैं जानती हूँ यह मेरी मूर्खता है। मैं जानती हूँ कि मुझे गैस दिये जाने का तनिक भी भय नहीं। दांत को निकलवाना भी मुझे कुछ नहीं खटकता। किन्तु फिर भी चीर-फाड की सम्पूर्ण क्रिया मुझे इतना भयभीत करती है कि सप्ताह के पश्चात् सप्ताह बीतते जा रहे हैं पर मैं अभी तक दांतों के चिकित्सक के पास नहीं गयी। मुझे क्या करना चाहिए"?

जिस स्त्री ने मुझे ऐसा लिखा है उसने यथार्थ मे अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं दे लिया है। उसने ठीक ढंग से भय के प्रश्न को सुलझाने की चेष्टा की है परन्तु समझने मे असफल रही है और इसी कारण उसने अपने ज्ञान से कोई लाभ नहीं उठाया।

भय के विषय मे लिखते हुए मैंने कहा था, "वीरता से इसका

सामना करो, इस की छान बीन करो, इसकी जड़ों को नंगा कर दो और देखो कि वास्तव में भय का कोई कारण भी है या नहीं।" मेरी पत्र-लेखिका ने ऐसा ही किया है। क्या वह गैस दिये जाने से डरती है? बिलकुल नहीं। क्या यह दांत निकलवाने से डरती है? वह स्वीकार करती है कि नहीं। फिर उसे भय किस बात का?

उसने जान लिया है कि भय—यदि वह इसके प्रत्येक भाग को पृथक् पृथक् ले—शक्तिहीन हो जाता है। उसकी भूल केवल इतनी ही है कि वह पुनः इस विग्रह से उस अस्पष्ट, संदिग्ध और साधारण विचार की ओर फिसल जाती है जो कि केवल इसलिए भयप्रद है क्योंकि वह संदिग्ध तथा अस्पष्ट है।

भय का प्रादुर्भाव होता है संदिग्धता से, अज्ञात के अन्तर्गत डर से और इनके अतिरिक्त, मुझे तनिक भी सदेह नहीं, कई अप्रिय या दुःखप्रद स्मृतियों से।

उस स्त्री के रोग का प्रतिकार है (१) भूतकाल की अनुभूतियों को भुलाने की चेष्टा करना; (२) अपने विग्रह के अनुसार समस्या के प्रत्येक खण्ड का पृथक् २ सामना करना; (३) यह समझना कि समस्या का प्रत्येक तत्त्व उसे भली भाँति विदित है। कोई भी संदिग्ध वस्तु नहीं जिसकी वह परिभाषा न जानती हो; और (४) अपने विचारों को पूर्णतया इन्हीं सीमाओं के भीतर रखना।

भय पर इस प्रकार का आक्रमण उसे अपने उचित सीमाओं में सीमित कर देता है।

साहस और भय

अब एक ऐसी समस्या उपस्थित होती है जिसका सम्बन्ध, निश्चय जानो, केवल मेरी पत्रलेखिका तक ही नहीं। उसका भय, निस्संदेह, मेरे सैंकड़ों पाठकों ने भी अनुभव किया होगा।

"मेरा पति बहुत रात गये तक काम करता रहता है," वह लिखती है, "और इस प्रान्त में इतनी चोरियां हो चुकी हैं कि मुझे अकेली रह जाने पर भय लगता है। मैं केवल बैठी रहती हूँ और द्वार खुलने की प्रतीक्षा करती रहती हूं।

"मैंने द्वार को कुर्सी के सहारे दृढ़तापूर्वक बंद करने की चेष्टा की, परन्तु व्यर्थ। अब द्वार को देखने के स्थान पर मैं कुर्सी को देखती रहती हूं और इसके हिलने जुलने की प्रतीक्षा करती हूं"।

वास्तव में जैसा इस पत्रलेखिका ने किया वह व्यर्थ है। यह तो केवल एक भय के स्थान पर दूसरे भय को ला खड़ा करना है। कुर्सी का प्रयोग करने से उसने (१) अपने भय की यथार्थता को मान लिया है; (२) और पहले की अपेक्षा अधिक दृढ़ता से अपना ध्यान उस ओर लगा दिया है।

मैं उस प्रान्त से परिचित हूं जहाँ पर यह स्त्री रहती है। वह मकान की पहली मञ्जिल पर रहती है। ऊपर और नीचे अन्य कई पड़ोसी हैं।

उसे यह तथ्य हृदयंगम करना चाहिए कि उसके अड़ोस-पड़ोस में मित्र रहते हैं जिन्हें वह सहज ही बुला सकती है। दूसरे जो भी चोरियां उस प्रान्त में हुई हैं वे उसके मकान के निकट नहीं हुईं। जिस सड़क पर उसका मकान है वह विशेष रूप से पुलिस द्वारा सुरक्षित है—यह दूसरा ठोस तथ्य है जिसकी ओर उसे ध्यान देना चाहिए।

उसे अपने भय का सामना इस ढंग से करना चाहिए कि वह उस संदिग्ध और अस्पष्ट अशान्ति के विरुद्ध उन ठोस तथ्यों को रक्खे जो उसके मन को सुख प्रदान करेंगे। और इस प्रकार के तथ्य और भी अनेकों होंगे।

अपने आप में प्रत्येक का मूल्य चाहे बिलकुल कम हो परन्तु उनका एकीकरण करने पर वे पर्याप्त मूल्यवान हो जायंगे।

भय का यह संदिग्ध विचार ही असह्य होता है। इस को तराजू के दूसरे पलड़े में ठोस तथ्यों के विरुद्ध डाल कर तोलो। तुम्हें इसकी तुच्छता पर आश्चर्य होगा।

खुला द्वार

एक लोकोक्ति है कि 'वर्तमान के सदृश और कोई समय नहीं'। कदाचित् यह सार्वलौकिक न भी हो।

परन्तु जब हम सतत सताने वाले भय की समस्या को लें तो इससे अधिक सत्य और कोई कथन नहीं हो सकता।

स्मरण रहे कि सभी भय भविष्य सम्बन्धी होते हैं। अनिश्चितता ही कष्टकारी होती है। हम अपना आधा समय किसी ऐसी घटना के बारे में दुःखी होने में काट देते हैं जो अभी तक घटित नहीं हुई और कदाचित् कभी घटित न हो।

और यह बात, प्रसंगवश, एक ऐसा सत्य है जो अवश्य समझना चाहिए, जब कभी भी भय अपने भयावह सिर को ऊपर निकाले।

किन्तु यदि तुम अनुभव करो कि कोई भय निरन्तर तुम्हारे पीछे पड़ा है, एक क्षण के लिए भी इसका सामना करने में विलंब न करो। जितनी तुम देर करोगे उतना ही यह असाध्य होता

जायगा और उसका विग्रह करना तुम्हारे लिए और भी कठिन हो जायगा।

विलंब से कल्पना को हस्तक्षेप करने का समय मिल जाता है और कल्पना का स्वभाव है कि वह भय को वृद्धि-दर्शक-कांच द्वारा देखती है। इसके अतिरिक्त, यदि तुम सत्य और झूठ का निर्णय करने में विलंब करते हो तो तुम अपनी विचारधारा को उसके निकास स्थान पर ही विषाक्त होने देते हो।

कोई भी अच्छा माली किसी भद्दी काई को निर्विघ्न बढ़ने का अवसर नहीं देता। इसके पहले कि वह बढ़ कर उसके परिश्रम को द्विगुणित कर दे वह उसे जड़ सहित उखाड़ फेंकता है।

भय एक असाधारणतः भद्दी काई है और इसकी जड़ें बहुत गहरी जाती हैं। इसको बढ़ने का अवसर मत दो।

यदि तुम एक विषय पर देर तक सोचते रहो तो ऐसा सोचना भ्रम-उत्पादक बन जाता है। तुम्हारा विचार शक्तिहीन हो जाता है और दिशा को भूल जाता है। ऐसे भ्रम से निकलने का एकमात्र शीघ्र उपाय है, वीरतापूर्वक उस विचार से पृथक् हो जाना।

भयग्रस्त पुरुष उस भूले हुए बन्दी के समान है जो दस वर्ष तक अपनी कोठरी में पड़ा रहा और न निकला जब तक एक दिन उसे यह विचार न आया कि वह द्वार खोले और भाग जाय।

वर्तमान के समान और कोई समय नहीं।

अपना व्यक्तित्व स्थिर रखना

कई पाठकोंने मुझे लिखा है कि मैं इस प्रश्न परभी कुछ प्रकाश डालूं कि "मैं उद्विग्नता से कैसे छुटकारा पा सकता हूं"? उनके इस प्रश्न का यथार्थ में यह तात्पर्य है कि "मैं आत्म विश्वास को कैसे समुन्नत कर सकता हूं? अथवा संकुचित करने वाली आत्म-अवज्ञा के स्थान पर आत्मविश्वास कैसे ला सकता हूं?"

इस लेखमें मैं केवल कुछ साधारण प्रारम्भिक बातें ही कहूंगा।

उद्विग्नता या अस्थिरता, यद्यपि यह असत्याभास प्रतीत होगा,प्रायः आत्म-प्रधानता के अत्युक्तिपूर्ण ज्ञान से उत्पन्न होती है। हम कल्पना करते हैं कि सभी की आंखें हम पर हैं, सभी के ध्यान का केन्द्र हम हैं, और हमारी आकृति, काम और शब्द हमारे मित्रों, परिचितों, और आगन्तुकों के लिये विशेष आकर्षण रखते हैं।

सच्चाई इस के बिलकुल विपरीत है। अधिक लोग अपने निजी विचारों और अपने निजी व्यवसायों मे इतने संलग्न होते हैं कि उनके पास अन्य लोगों के विषय मे सोचने का समय ही नहीं होता। इसलिये इस विचार को त्याग दो कि केवल तुम ही एक ऐसे व्यक्ति रह गये हो जिस के बारे मे अन्य लोग सोच रहे हैं। वे तुम्हारे विषय में प्रायः उतना नहीं सोच रहे जितना कि तुम अपने विषय मे सोच रहे हो।

यह यथार्थ में एक ऐसा विषय है जिस के बारे मे मैंने पहले भी लिखा है। उद्विग्नता का आक्रमण तभी होता है जब किसी के विचार बाह्यमुख होने के स्थान पर निरन्तर अन्तर्मुख होते हैं। यह उस निरन्तर किये जाने वाले आत्म-विग्रह का परिणाम है जिसने बढ़कर मानसिक अस्वस्थता का रूप धारण कर लिया हो।

एक प्रसिद्ध लेखक ने कभी एक महत्त्वाकांक्षी नवयुवक पत्रकार को कहा "स्मरण रखो कि प्रत्येक पुरुष जिससे तुम मिलते हो तुम्हें कम से कम एक स्वर्णमुद्रा के मूल्य का लेख दे सकता है।" उसका अभिप्राय यह था कि सभी में कोई ऐसी विलक्षणता, कोई ऐसी विशेषता विद्यमान है जो विशेष प्रकार से उसी की है। यह विलक्षणता या विशेषता तुम में भी हो सकती है।

यदि तुम अन्य लोगों को चित्ताकर्षक पाते हो तो विश्वास रक्खो वे भी तुम्हें मनोहारी समझते हैं।

तुम्हारी कल्पनायें, तुम्हारा दृष्टिकोण तुम्हारी दृष्टि में चाहे कुछ महत्त्व न रखें परन्तु अन्य लोगों के लिये कदाचित् ये मौलिक और प्रोत्साहन देने वाले हैं। यह समझना पहला डग बढ़ाना है।

आत्मोन्नति

आत्म-विश्वास के अभाव का बहुधा अर्थ होता है आत्म-अनभिज्ञता। वह व्यक्ति जो अन्य लोगों के संसर्ग में असुविधा अनुभव करता है, अधिकतर, ऐसा व्यक्ति होता है जो अपनी शक्तियों को समझने में असफल रहा हो।

मानव-व्यवहार का एक अपना नियम है जिसका हम प्रायः पालन नहीं करते। इसके अनुसार हमें उतनी मात्रा में प्रदान भी करना चाहिये जितनी मात्रा में हम कुछ ग्रहण करें। हमें इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि जो ज्ञान, अनुभव, और शक्ति हम औरों से ग्रहण करते हैं किसी न किसी प्रकार पुनः धारा बन कर अन्य लोगों के हितार्थ वह निकलें।

अन्यथा, हम अपने मन को बन्द नालियों में परिवर्तित कर देते हैं जब कि उन्हें कल्पनाओं और विचारों के सुगम बहाव के

लिये अवरोध रहित स्रोत होना चाहिये।

मैकाले ने एक बार पाठशाला के विद्यार्थियों का नाम निर्धारण करते समय उन्हें 'चलती फिरती पुस्तकें' कहा था। प्रायः यद्यपि हम बड़े भी हो जाते हैं तो भी 'चलती फिरती पुस्तकें' ही रहते हैं। और कवि पोप के कथनानुसार :—

निरर्थक पुस्तकों के घर सभी के सिर बने हैं;
निरन्तर और पढ़ने को, स्वयं पर अनपढ़े हैं!

शारीरिक अजीर्णता संसार को हमारे लिये नीरस बना देती है। मानसिक अजीर्णता भी ऐसा कर सकती है। आत्मविश्वास से रहित पुरुष को उचित है कि वह पहले इस बात का निश्चय करले कि कहीं वह उस घृणा और उपेक्षा के लिये तो अपने साथियों पर दोष नहीं लगा रहा जो वस्तुतः उस के अपने मन में विद्यमान हैं।

जैसे भी हो एक लज्जालु और आत्म-भीरु पुरुष को आत्म-निवेदन का कोई न कोई साधन ढूंढने की अवश्य चेष्टा करनी चाहिये।

उसे आत्मोन्नति के उपायों को ढूंढने का प्रयत्न करना चाहिये और मन की निराशावादी अवस्था के स्थान पर आशावादी वातावरण समुन्नत करना चाहिये।

उदाहरण के लिये पत्र लिखना ले लो। यदि तुम किसी पुरुष से बातचीत करने में कठिनाई अनुभव करते हो, उसको पत्र लिख दो। अगली बार जब तुम मिलोगे तुम्हारे लिये बातचीत करने का बना बनाया विषय उपस्थित होगा।

आत्म-निवेदन आत्म-विश्वास की कुञ्जी है।

आत्म-विकास

आत्म विश्वास के अभाव को दूर करने के लिये यह समझना और विश्वास करना आवश्यक है कि यह एक ऐसी मानसिक अवस्था है जिसका उपाय हो सकता है। यद्यपि यह बात साधारण सी प्रतीत होती है परन्तु इस पर बल देने की अत्यावश्यकता है। मेरे कई पाठक और पत्र-लेखक यह सोचते प्रतीत होते हैं कि उनके बारे में कुछ भी नहीं किया जासकता, भले ही अन्य सफल हो जायं।

'आत्म-विश्वास का अभाव एक मानसिक अवस्था है' ये शब्द भलि भांति हृदय में बिठा लो, क्योंकि, यद्यपि मैं स्वीकार करता हूं कि शारीरिक अस्वस्थता वा दुर्बलता सहायक कारण हैं, पर भीरुता और लज्जा का मन से सम्बन्ध है और उनके लिये मानसिक उपायों की आवश्यकता है।

इसी कारण मैं आत्म-विकास के विषय को छेड़ रहा हूं। यदि आप में आत्मविश्वास की कमी है तो आवश्यकता है तुम्हारी मानसिक अवस्था को सुधारने की और केवल आत्म-सहायता ही यहां कुछ लाभप्रद प्रमाणित हो सकती है।

शारीरिक उन्नति की ओर भी अवश्य ध्यान दो। अस्वस्थ शरीर मन पर बुरा प्रभाव डाले बिना न रहेगा।

अन्य समस्याओं की भांति, छान बीन और विग्रह की सब से प्रथम आवश्यकता है।

आत्मज्ञता सदैव आत्म-विकास से पूर्व होनी चाहिये। अंधेरे मे ही संदिग्ध रूप से बड़ी २ भूलें मत करो। कोई भी पुरुष सदैव आत्मविश्वास से विरहित नहीं होता। भली भांति

विदित करो कि कष्ट का कारण कहां है।

तब एक एक कर के कठिनाइयों का सामना करो। क्या आप को अपनी सामर्थ्य पर विश्वास नहीं ? कदाचित कोई ऐसा प्रिय-कार्य है जिस को करने में तुम्हारी प्रतिभा प्रकाशित हो उठती है—यह एक प्रमाण है कि किसी न किसी विषय में तुम्हारी निपुणता निर्विवाद और संशय रहित है। यदि तुम एक काम करने की सामर्थ्य रखते हो तो अन्य काम भी उसी निपुणता से कर सकते हो—यदि उनके लिये पर्याप्त रुचि बढ़ालो और अभ्यास कर लो।

कुछ ऐसे लोग भी अवश्य होंगे जिन में मिल जुल कर तुम लज्जा या भीरुता अनुभव नहीं करते। क्या इस का कारण एक जैसी रुचि अथवा एक प्रकार की रुचि का समुदाय नहीं ? अगली बार जब तुम किसी से मिलो, कोई ऐसा विषय ढूंढने की चेष्टा करो जिस में दोनों की एक समान रुचि हो।

तुम लज्जा करना भूल जाओगे।

आत्म-विकास का अर्थ है रुचिकर वस्तुओं की खोज। आत्म-विश्वास के अभाव का अभिप्राय है निर्बल मानसिक'पट्ठे'। उन से काम लो और उनको सुदृढ़ बनाओ।

मरणोन्मुख कभी मत बनो

अगणित लोग, जो समझते हैं कि उनमें आत्म-विश्वास का अभाव है, गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर अनुभव करेंगे कि उनकी समस्या वास्तव में इस भाव का आधिक्य है कि 'अन्य लोग मेरे बारे में क्या सोच रहे हैं"।

अधिकतर इस भाव का आधार कोई शारीरिक दोष होता है जैसे कि पंगुता, रुक रुक कर बोलना इत्यादि।

उस पीड़ित व्यक्ति को अपनी इस असमर्थता का इतना ध्यान रहता है कि वह समझता है कि अन्य लोगों को भी उसके समान ही उसके बारे में ज्ञान है। यह धारणा उसकी समस्त क्रियाओं के मार्ग में बाधा बन जाती है और उसकी शक्तियों को निरन्तर खाली करने वाली नाली प्रमाणित होती है।

अन्त में, संभवतः वह अपनी दशा पर शोक प्रकट करता है। और ऐसा करने से वह किसी का भला नहीं करता—अपना भी नहीं। आत्म-ग्लानि उत्पन्न करती है घृणा—अपने साथियों के प्रति, संसार के प्रति और जीवन के प्रति घृणा। परन्तु पीड़ित व्यक्ति यदि इतिहास के पन्नों को उलटे तो कदाचित् उसे प्रोत्साहन मिल जाय।

डिमास्थनीज़ प्राचीन ग्रीस के ओजस्वी वक्ता के रूप में सदा के लिए प्रसिद्ध रहेगा।

परन्तु डिमास्थनीज़ रुक रुक कर बोलता था!

मोज़र्ट, संगीत के एक अमर कलाकार ने अपनी असमर्थता को अपनी विलक्षण बुद्धि का गला घोंटने न दिया।

क्योंकि मोज़र्ट का एक कान काम नहीं करता था!

बायरन का एक पाँव स्थूल था; पोप लंगड़ा था; मिल्टन ने अधिक महत्त्वपूर्ण काम नेत्रहीन हो जाने पर किया।

उन सभी ने इन बाधाओं को मार्ग में टिकने न दिया। उन्होंने अपनी दशा पर आँसू बहाने में तनिक भी समय न खोया। उन्होंने यह भाव कि 'लोग मेरे बारे में क्या सोच रहे हैं'? तनिक न आने दिया।

किन्तु बहुत से लोग ऐसे हैं जिनके लिए इमर्सन के ये शब्द प्रयोग में लाए जा सकते हैं :—'जो कुछ तुम हो अर्थात् तुम्हारी

वर्तमान अवस्था तुम पर पूर्णतया विजयी है और इस प्रकार गा
रही है कि इसके विरुद्ध जो कुछ भी तुम कहते हो, मैं नहीं !
पाता" । देखना, जो कुछ तुम हो अर्थात् तुम्हारी वर्तमान स्थि
अपनी छाया से तुम्हारे जीवन को अंधकारपूर्ण न बना दे । अ
भविष्य को अर्थात् जो कुछ तुम बन सकते हो अपने प्रयत्नों औ
विचारों का पथ-प्रदर्शक बनने दो ।

यदि आप में किसी एक वस्तु का अभाव है तो निश्चय जा
कि तुम में उस कमी को पूरा करने के लिए कोई विलक्षणता
अवश्य होगी, जिसके द्वारा तुम अपना पल्लड़ा भारी रख सकते हो
विघ्न बाधाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है ।

संसार को, वास्तव में, तुम्हारे उन गुणों की आवश्यकता
जो तुम में हैं—इसे तुम्हारी असमर्थताओं की कोई चिन्ता नहीं ।

अपने आप को खोजो !

आत्म-विश्वास की समस्या अधिकांश में अपने यथार्थ रूप क
कोई क्या समझता है इस पर आश्रित है । एक मनुष्य के व्यक्ति
के कई पक्ष हैं, और वे सारे ही महत्त्वपूर्ण नहीं होते ।

मनुष्य के जीवन का कोई एक पक्ष, जीवन काल में, इतन
समुन्नत किया जा सकता है कि वह उस पुरुष का विशेष लक्षण
बन सकता है । किन्तु वह सच्चा लक्षण तभी बनता है जब अन्य
पक्ष, अन्य योग्यताएं कम या अधिकांश में दबा दी जाती हैं ।

हीनता की भावना, जिसे आत्म-विश्वास से रहित पुरुष इतने
तीव्रता से अनुभव करते हैं, असफलता से प्रादुर्भूत होती है ।
किसी काम को करने की चेष्टा की गई, परिणाम बुरा और असं-

तोपनक निकला, अनिवार्यतः किसी ऐसे पुरुष से तुलना की जाती है जिसने उसी काम को सफलतापूर्वक किया हो।

परिणाम यह निकला कि यह निश्चय कर लेना अत्यावश्यक है कि हमारा व्यक्तित्व जिसके आधार पर हम अपनी सारी आशाओं और उत्कट इच्छाओं को दाव पर लगा देते हैं, वस्तुतः हमारे जीवनका सर्वोत्तम और सबा पक्ष है या नहीं। अपनी शक्तियों और अभिलाषाओं का शांत और निष्कपट अध्ययन आत्म-विश्वास को बढ़ाने की चेष्टा का सच्चा प्रारंभ है।

महत्वाकांक्षा, यथार्थ में आश्चर्यजनक उत्तोलक दण्ड है, परन्तु ध्यान रहे कि प्रेरणा किसी ऐसे काम की ओर हो जिसे तुम अनुभव करो कि तुम्हारी शक्ति सम्पादन कर सकती है। और यह भी पहले निश्चय कर लो कि लक्ष्य-प्राप्ति के लिए तुम्हारा प्रयत्न लाभ प्रद भी होगा या नहीं।

'अपने वेतन की मांग शून्य रक्खो," कार्लाइल ने कहा "तब सारा संसार तुम्हारे चरणों के नीचे होगा"।

गीता में भी भगवान् कृष्ण ने कहा है कि —

कर्मण्येव अधिकारास्ते मा फलेषु कदाचन।

काम करने में तुम्हारा अधिकार है फलों की इच्छा करने में नहीं।

दूसरे शब्दों में निष्काम भाव से कर्म करो तो तुम्हें कभी भी निराशा का मुख न देखना पड़े। बल्कि प्रत्येक सफलता जो तुम्हें प्राप्त होगी नयी विजयों को पाने के लिए आगे बढ़ने को उभारने वाली होगी।

जिन लोगों की सम्मति तुम्हारे लिए उपयोगी प्रमाणित हो सके उनमें और जिनकी आलोचना तुम्हारे मार्ग में बाधा सिद्ध हो उनमें अन्तर जानो।

यदि 'आंखों का अंधा नाम नैनसुख' वाली कहावत तुम्हारे लिए चरितार्थ नहीं होती तो सत्य जानो, तुम्हें हर कोई हानि नहीं पहुँचा सकता।

कार्लाइल के इस सादे कथन में एक गंभीर तथ्य निहित है कि, "हे मूर्ख, मैं तुम्हें कहता हूँ कि यह सब तुम्हारे मिथ्याभिमान का परिणाम है"।

अतः मिथ्याभिमान सर्वथा त्याज्य है। अपने आप को खोजो। अपने दुर्गुणों को दूर करो और सद्गुणों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करो। बाह्याडम्बर का कोई मूल्य नहीं।

नीति का वचन है कि :—

गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम्।
विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीर विवर्जिताः॥

गुणों की प्राप्ति के लिए यत्न करना चाहिए, बाह्याटम्बरों से क्या लाभ? दूध से रहित गौएं घण्टों से सजा कर नहीं बिकतीं।

चुस्त कपड़े

कथाकार किलिङ्ग 'स्टाकी और उसके साथी' नाम की एक कथा में इस घटना का वर्णन करता है कि एक मूक नाटक का पूर्व-अभिनय करते समय जब पाठशाला के विद्यार्थी कोलाहल कर रहे थे तो अकस्मात् कहीं से उनका अध्यापक वहां आ उपस्थित हुआ।

सभी अपराधी अवाक् रह गये और किंकर्तव्यविमूढ़ दिखाई देने लगे। केवल स्टाकी ने ही क्रुद्ध अध्यापक का शान्तिपूर्वक सामना किया क्योंकि चुस्त कपड़ों में होने के कारण उसे पूर्ण आत्म-विश्वास था।

एक प्रसिद्ध लेखक ने कभी एक महत्त्वाकांक्षी नवयुवक पत्रकार को कहा "स्मरण रक्खो कि प्रत्येक पुरुष जिससे तुम मिलते हो तुम्हें कम से कम एक स्वर्णमुद्रा के मूल्य का लेख दे सकता है।" उसका अभिप्राय यह था कि सभी में कोई ऐसी विलक्षणता, कोई ऐसी विशेषता विद्यमान है जो विशेष प्रकार से उसी की है। यह विलक्षणता या विशेषता तुम में भी हो सकती है।

यदि तुम अन्य लोगों को चित्ताकर्षक पाते हो तो विश्वास रक्खो वे भी तुम्हें मनोहारी समझते हैं।

तुम्हारी कल्पनायें, तुम्हारा दृष्टिकोण तुम्हारी दृष्टि में चाहे कुछ महत्त्व न रखें परन्तु अन्य लोगों के लिये कदाचित् वे मौलिक और प्रोत्साहन देने वाले हैं। यह समझना पहला डग बढ़ाना है।

आत्मोन्नति

आत्म-विश्वास के अभाव का बहुधा अर्थ होता है आत्म-अनभिज्ञता। वह व्यक्ति जो अन्य लोगों के संसर्ग में असुविधा अनुभव करता है, अधिकतर, ऐसा व्यक्ति होता है जो अपनी शक्तियों को समझने में असफल रहा हो।

मानव-व्यवहार का एक अपना नियम है जिसका हम प्रायः पालन नहीं करते। इसके अनुसार हमें उतनी मात्रा में प्रदान भी करना चाहिये जितनी मात्रा में हम कुछ ग्रहण करें। हमें इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि जो ज्ञान, अनुभव, और शक्ति हम औरों से ग्रहण करते हैं किसी न किसी प्रकार पुनः धारा बन कर अन्य लोगों के हितार्थ वह निकलें।

अन्यथा, हम अपने मन को बन्द नालियों में परिवर्तित कर देते हैं जब कि उन्हें कल्पनाओं और विचारों के सुगम बहाव के

लिये अवरोध रहित स्रोत होना चाहिये।

मैकाले ने एक बार पाठशाला के विद्यार्थियों का नाम निर्धारण करते समय उन्हें 'चलती फिरती पुस्तकें' कहा था। प्रायः यद्यपि हम बड़े भी हो जाते हैं तो भी 'चलती फिरती पुस्तकें' ही रहते हैं। और कवि पोप के कथनानुसार :—

निरर्थक पुस्तकों के घर सभी के सिर बने हैं;
निरन्तर और पढ़ने को, स्वयं पर अनपढ़े हैं!

शारीरिक अजीर्णता संसार को हमारे लिये नीरस बना देती है। मानसिक अजीर्णता भी ऐसा कर सकती है। आत्मविश्वास से रहित पुरुष को उचित है कि वह पहले इस बात का निश्चय करले कि कहीं वह उस घृणा और उपेक्षा के लिये तो अपने साथियों पर दोष नहीं लगा रहा जो वस्तुतः उस के अपने मन में विद्यमान है।

जैसे भी हो एक लज्जालु और आत्म-भीरु पुरुष को आत्म-निवेदन का कोई न कोई साधन ढूंढने की अवश्य चेष्टा करनी चाहिये।

उसे आत्मोन्नति के उपायों को ढूंढने का प्रयत्न करना चाहिये और मन की निराशावादी अवस्था के स्थान पर आशावादी वातावरण समुन्नत करना चाहिये।

उदाहरण के लिये पत्र लिखना ले लो। यदि तुम किसी पुरुष से बातचीत करने में कठिनाई अनुभव करते हो, उसको पत्र लिख दो। अगली बार जब तुम मिलोगे तुम्हारे लिये बातचीत करने का बना बनाया विषय उपस्थित होगा।

आत्म-निवेदन आत्म-विश्वास की कुञ्जी है।

—०—

आत्म-विकास

आत्म-विश्वास के अभाव को दूर करने के लिये यह समझना और विश्वास करना आवश्यक है कि यह एक ऐसी मानसिक अवस्था है जिसका उपाय हो सकता है। यद्यपि यह बात साधारण सी प्रतीत होती है परन्तु इस पर बल देने की अत्यावश्यकता है। मेरे कई पाठक और पत्र-लेखक यह सोचते प्रतीत होते हैं कि उनके बारे में कुछ भी नहीं किया जासकता, भले ही अन्य सफल हो जायं।

'आत्म-विश्वास का अभाव एक मानसिक अवस्था है' ये शब्द भलि भांति हृदय में बिठा लो, क्योंकि, यद्यपि मैं स्वीकर करता हूं कि शारीरिक अस्वस्थता वा दुर्बलता सहायक कारण हैं, पर भीरुता और लज्जा का मन से सम्बन्ध है और उनके लिये मानसिक उपायों की आवश्यकता है।

इसी कारण मैं आत्म-विकास के विषय को छेड़ रहा हूं। यदि आप में आत्मविश्वास की कमी है तो आवश्यकता है तुम्हारी मानसिक अवस्था को सुधारने की और केवल आत्म-सहायता ही यहां कुछ लाभप्रद प्रमाणित हो सकती है।

शारीरिक उन्नति की ओर भी अवश्य ध्यान दो। अस्वस्थ शरीर मन पर बुरा प्रभाव डाले बिना न रहेगा।

अन्य समस्याओं की भांति, छान बीन और विग्रह की सब से प्रथम आवश्यकता है।

आत्मज्ञता सदैव आत्म-विकास से पूर्व होनी चाहिये। अंधेरे में ही संदिग्ध रूप से बड़ी २ भूलें मत करो। कोई भी पुरुष सदैव आत्मविश्वास से विरहित नहीं होता। भली भांति

विदित करो कि कष्ट का कारण कहां है।

तब एक एक कर के कठिनाइयों का सामना करो। क्या आप को अपनी सामर्थ्य पर विश्वास नहीं? कदाचित कोई ऐसा प्रिय कार्य है जिस को करने में तुम्हारी प्रतिभा प्रकाशित हो उठती है—यह एक प्रमाण है कि किसी न किसी विषय में तुम्हारी निपुणता निर्विवाद और संशय रहित है। यदि तुम एक काम करने की सामर्थ्य रखते हो तो अन्य काम भी उसी निपुणता से कर सकते हो—यदि उनके लिये पर्याप्त रुचि बढ़ालो और अभ्यास कर लो।

कुछ ऐसे लोग भी अवश्य होंगे जिन में मिल जुल कर तुम लज्जा या भीरुता अनुभव नहीं करते। क्या इस का कारण एक जैसी रुचि अथवा एक प्रकार की रुचि का समुदाय नहीं? अगली बार जब तुम किसी से मिलो, कोई ऐसा विषय ढूंढने की चेष्टा करो जिस में दोनों की एक समान रुचि हो।

तुम लज्जा करना भूल जाओगे।

आत्म-विश्वास का अर्थ है रुचिकर वस्तुओं की खोज। आत्म-विश्वास के अभाव का अभिप्राय है निर्बल मानसिक'पट्ठे'। उन से काम लो और उनको सुदृढ़ बनाओ।

मरणोन्मुख कभी मत बनो

अगणित लोग, जो समझते हैं कि उनमे आत्म-विश्वास का अभाव है, गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर अनुभव करेंगे कि उनकी समस्या वास्तव मे इस भाव का आधिक्य है कि "अन्य लोग मेरे बारे मे क्या सोच रहे हैं"।

अधिकतर इस भाव का आधार कोई शारीरिक दोष होता है जैसे कि पंगुता, रुक रुक कर बोलना इत्यादि।

उस पीड़ित व्यक्ति को अपनी इस असमर्थता का इतना ध्यान रहता है कि वह समझता है कि अन्य लोगों को भी उसके समान ही उसके बारे में ज्ञान है। यह धारणा उसकी समस्त क्रियाओं के मार्ग में बाधा बन जाती है और उसकी शक्तियों को निरन्तर खाली करने वाली नाली प्रमाणित होती है।

अन्त में, संभवतः वह अपनी दशा पर शोक प्रकट करता है। और ऐसा करने से वह किसी का भला नहीं करता—अपना भी नहीं। आत्म-ग्लानि उत्पन्न करती है घृणा—अपने साथियों के प्रति, संसार के प्रति और जीवन के प्रति घृणा। परन्तु पीड़ित व्यक्ति यदि इतिहास के पन्नों को उलटे तो कदाचित् उसे प्रोत्साहन मिल जाय।

डिमास्थनीज़ प्राचीन ग्रीस के ओजस्वी वक्ता के रूप में सदा के लिए प्रसिद्ध रहेगा।

परन्तु डिमास्थनीज़ रुक रुक कर बोलता था!

मोज़र्ट, संगीत के एक अमर कलाकार ने अपनी असमर्थता को अपनी विलक्षण बुद्धि का गला घोंटने न दिया।

क्योंकि मोज़र्ट का एक कान काम नहीं करता था!

बायरन का एक पाँव स्थूल था; पोप लंगड़ा था; मिल्टन ने अधिक महत्त्वपूर्ण काम नेत्रहीन हो जाने पर किया।

इन सभी ने इन बाधाओं को मार्ग में टिकने न दिया। उन्होंने अपनी दशा पर आँसू बहाने में तनिक भी समय न खोया। उन्होंने यह भाव कि 'लोग मेरे बारे में क्या सोच रहे हैं'? तनिक न आने दिया।

किन्तु बहुत से लोग ऐसे हैं जिनके लिए इमर्सन के ये शब्द प्रयोग में लाए जा सकते हैं :—'जो कुछ तुम हो अर्थात् तुम्हारी

वर्तमान अवस्था तुम पर पूर्णतया विजयी है और इस प्रकार गरज रही है कि उसके विरुद्ध जो कुछ भी तुम कहते हो, मैं नहीं सुन पाता"। देखना, जो कुछ तुम हो अर्थात् तुम्हारी वर्तमान स्थिति अपनी छाया से तुम्हारे जीवन को अंधकारपूर्ण न बना दे। अपने भविष्य को अर्थात् जो कुछ तुम बन सकते हो अपने प्रयत्नों और विचारों का पथ-प्रदर्शक बनने दो।

यदि आप में किसी एक वस्तु का अभाव है तो निश्चय जानो कि तुम में उस कमी को पूरा करने के लिए कोई विलक्षणता भी अवश्य होगी, जिसके द्वारा तुम अपना पलड़ा भारी रख सकते हो। विघ्न बाधाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

संसार को, वास्तव में, तुम्हारे उन गुणों की आवश्यकता है जो तुम में हैं—इसे तुम्हारी असमर्थताओं की कोई चिन्ता नहीं।

अपने आप को खोजो!

आत्म-विश्वास की समस्या अधिकांश में अपने यथार्थ रूप को कोई क्या समझता है इस पर आश्रित है। एक मनुष्य के व्यक्तित्व के कई पक्ष हैं, और वे सारे ही महत्त्वपूर्ण नहीं होते।

मनुष्य के जीवन का कोई एक पक्ष, जीवन काल में, इतना समुन्नत किया जा सकता है कि वह उस पुरुष का विशेष लक्षण बन सकता है। किन्तु वह सच्चा लक्षण तभी बनता है जब अन्य पक्ष, अन्य योग्यताएँ कम वा अधिकांश में दबा दी जाती हैं।

दीनता की भावना, जिसे आत्म-विश्वास से रहित पुरुष इतनी तीव्रता से अनुभव करते हैं, असफलता से प्रादुर्भूत होती है। किसी काम को करने की चेष्टा की गई, परिणाम बुरा और असं-

तोषजनक निकला; अनिवार्यतः किसी ऐसे पुरुष से तुलना की जाती है जिसने उसी काम को सफलतापूर्वक किया हो।

परिणाम यह निकला कि यह निश्चय कर लेना अत्यावश्यक है कि हमारा व्यक्तित्व जिसके आधार पर हम अपनी सारी आशाओं और उत्कट इच्छाओं को दांव पर लगा देते हैं, वस्तुतः हमारे जीवनका सर्वोत्तम और सच्चा पद है या नहीं। अपनी शक्तियों और अभिलाषाओं या शांत और निष्कपट अध्ययन आत्म-विश्वास को बढ़ाने की चेष्टा का सच्चा प्रारंभ है।

महत्वाकांक्षा, यथार्थ में आश्चर्यजनक उत्तोलक दण्ड है; परन्तु ध्यान रहे कि प्रेरणा किसी ऐसे काम की ओर हो जिसे तुम अनुभव करो कि तुम्हारी शक्ति सम्पादन कर सकती है। और यह भी पहले निश्चय कर लो कि लक्ष्य-प्राप्ति के लिए तुम्हारा प्रयत्न लाभप्रद भी होगा या नहीं।

"अपने वेतन की मांग शून्य रक्खो," कार्लाइल ने कहा, "तब सारा संसार तुम्हारे चरणों के नीचे होगा"।

गीता में भी भगवान् कृष्ण ने कहा है कि :—

कर्मण्येव अधिकारास्ते मा फलेषु कदाचन।

काम करने में तुम्हारा अधिकार है, फलों की इच्छा करने में नहीं।

दूसरे शब्दों में निष्काम भाव से कर्म करो तो तुम्हें कभी भी निराशा का मुख न देखना पड़े। बल्कि प्रत्येक सफलता जो तुम्हें प्राप्त होगी नयी विजयों को पाने के लिए आगे बढ़ने को उभारने वाली होगी।

जिन लोगों की सम्मति तुम्हारे लिए उपयोगी प्रमाणित हो सके उनमें और जिनकी आलोचना तुम्हारे मार्ग में बाधा सिद्ध हो उनमें अन्तर जानो।

यदि 'आंखों का अंधा नाम नैनसुख' वाली कहावत तुम्हारे लिए चरितार्थ नहीं होती तो सत्य जानो तुम्हें हर कोई हानि नहीं पहुँचा सकता।

कार्लाइल के इस सादे कथन में एक गंभीर तथ्य निहित है कि "हे मूर्ख, मैं तुम्हें कहता हूँ कि यह सब तुम्हारे मिथ्याभिमान का परिणाम है"।

अतः मिथ्याभिमान सर्वथा त्याज्य है। अपने आप को खोजो। अपने दुर्गुणों को दूर करो और सद्गुणों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करो। वाह्याडम्बर का कोई मूल्य नहीं।

नीति का वचन है कि —

> गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम्।
> विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीर विवर्जिता ॥

गुणों की प्राप्ति के लिए यत्न करना चाहिए, वाह्याडम्बरों से क्या लाभ ? दूध से रहित गौएं घण्टों से सजा कर नहीं बिकतीं।

चुस्त कपड़े

कथाकार किपलिङ्ग 'स्टाकी और उसके साथी' नाम की एक कथा में इस घटना का वर्णन करता है कि एक मूक नाटक का पूर्व-अभिनय करते समय जब पाठशाला के विद्यार्थी कोलाहल कर रहे थे तो अकस्मात् कहीं से उनका अध्यापक वहां आ उपस्थित हुआ।

सभी अपराधी अवाक् रह गये और किंकर्तव्यविमूढ़ दिखाई देने लगे। केवल स्टाकी ने ही क्रुद्ध अध्यापक का शान्तिपूर्वक सामना किया क्योंकि चुस्त कपड़ों में होने के कारण उसे पूर्ण आत्म विश्वास था।

आत्म-विश्वास की समस्या पर यह किंचिन्मात्र प्रकाश है जिस पर कुछ अधिक विचार की आवश्यकता है। यह बात इतनी तुच्छ नहीं, जितनी प्रतीत होती है।

एक स्त्री जिस उत्सुकता के साथ अपनी व्यक्तिगत वेषभूषा की चिन्ता करती है, तत्सम्बन्धी छोटी छोटी बातों का ध्यान रखती है, और किसी भी अन्य स्त्री के समान, जो उसे मार्ग में मिले, सुसज्जित होने की आकुलता को व्यक्त करती है, उसमें मनुष्यों को मनोरंजन की पर्याप्त सामग्री मिल जाती है।

तौभी, स्त्री मनुष्यों की अपेक्षा मनोविज्ञान को अधिक जानने वाली है।

मनुष्य का मन अपनी परिस्थितियों से शीघ्र ही प्रभावित हो जाता है। इस पर वातावरण का रंग अवश्य चढ़ जाता है और अपनी व्यक्तिगत स्वच्छ और सुन्दर आकृति के ज्ञान का भी उस आत्म-विश्वास को उत्पन्न करने में आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है जिसके होने पर मनुष्य अन्य पुरुषों के सामने अपनी आंखें नीचे नहीं डालता।

स्वच्छता और अपने शारीरिक सौन्दर्य पर अभिमान करना केवल स्त्रियों का ही विशेष अधिकार नहीं। एक पुरुष भी, स्त्रियोचित शृंगार के बिना, स्वच्छता के लिए अच्छे साफ सुथरे कपड़े पहिर सकता है।

अपने आत्म-सम्मान के लिए उसे अपने आप को सर्वोत्तम स्थिति में रखना अत्यावश्यक है।

निस्सन्देह वस्त्र मनुष्य को मनुष्य नहीं बनाते, परन्तु अपने व्यक्तित्व को व्यक्त करने का ये प्रवेशपथ बनाये जा सकते हैं।

एक अपवित्र मन, स्वयं इतना कारण नहीं होता जितना

किसी वस्तु का फल। तब मानसिक पवित्रता और शक्ति के किसी ऐसे साधन को क्यों भुलाया जाय जो कि तुम्हारी शक्ति से साध्य हो ?

'चुस्त कपड़ों से आत्म-विश्वास का उत्पन्न होना' एक मनोवैज्ञानिक सत्य है जो प्रत्येक ऐसी स्त्री को भली भाँति विदित है जो एक नयी साड़ी खरीदती है।

मनुष्यों के लिए भी इस तथ्य की उपयोगिता कम सत्य नहीं।

विजय प्राप्ति के लिये युद्ध

धर्म और विज्ञान अभी तक इस प्रश्न को सुलझाने में लगे हैं कि मनुष्य स्वर्ग से निकाला हुआ एक देवता है या समुन्नत जन्तु। इस का हल कुछ भी हो, मनोवैज्ञानिकों को ऐसे अगणित प्रमाण मिलते हैं जो बताते हैं कि मनुष्य के मानसिक जीवन की प्रेरणा उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर है। प्रत्येक पुरुष के भीतर रहने वाली रचनात्मक शक्ति के असीम बल में और समाज, लोकमत तथा आचार सम्बन्धी विघ्न बाधाओं में एक सतत संघर्ष सदा चलता रहता है।

हम सदैव एक युद्ध में जूझे रहते हैं; ऐसा युद्ध, जिसे मनोवैज्ञानिक कहते हैं "जीवन का मूल और स्रोत है। बिना युद्ध के हम कभी भी अपने नाड़ीमण्डल की व्यवस्था न कर पाते, चाहे हम जीवित रहने में सफल हो जाते।"

जब कभी भी हमें किसी ऐसी कठिनाई का सामना करना पड़े जिस के लिये हमारी दैवी और आसुरी प्रवृत्तियों में मुठभेड़ होना अनिवार्य हो, हमें उचित है कि परिणाम को ध्यान में रखते हुए डट कर सामना करें।

यदि युद्ध में जीत हो जाय, आत्मिक और मानसिक शक्ति तुच्छ पदार्थों के दासत्व से मुक्त हो जाती है, शुद्ध और पवित्र बन जाती है और नये तथा उत्कृष्ट कार्यक्षेत्र में सिद्धि पाने के लिये स्वतंत्र कर दी जाती है। यदि युद्ध में हार हो जाय, सारे व्यक्तित्व को तीव्र आघात पहुंचता है और प्रायः इसका फल मिलता है लज्जा, आत्म-सम्मान को धक्का और असफलता की भावना की उत्पत्ति जो अगली परीक्षा के लिये सामना करने की शक्ति को कम कर देती है।

प्रत्येक युद्ध, मानसिक या आध्यात्मिक अन्त तक लड़ा जाना चाहिये। विजय पाने के लिये कोई प्रयत्न रक्खा न जाय।

प्रत्येक लाभ जो हम प्राप्त करते हैं अन्य समस्याओं की युद्ध-भूमि बन जाता है। इसकी चिन्ता न करनी चाहिए क्योंकि सत्य जानो यह युद्ध कभी समाप्त नहीं होगा।

स्मरणीय बात यह है कि युद्ध उस शक्ति का सूचक है जो उन्नति के पथ पर अग्रसर होने का सिरतोड़ परिश्रम कर रही है।

यह जानते हुए, 'जीतने के लिये युद्ध करना' ये शब्द तुम्हारे प्रतिदिन पथ-प्रदर्शक बनें।

—०—

असफल नेता

इन लेखों का उद्देश्य इस बात को स्पष्ट करना है कि किस प्रकार मानवयन्त्र की कार्यक्षमता बढ़ाई जा सकती है; और इस बात को भी बताने की चेष्टा करना है कि मनुष्य चक्रमार्ग से बाहिर निकल कर कैसे संसार में उन्नति कर सकता है।

किन्तु जब यन्त्र का प्रयोग अधिक से अधिक शक्ति उत्पन्न करने के लिये किया जाय, तो आवश्यक है कि यह भली भांति

विदित हो कि अतिरिक्त शक्ति का उपयोग कैसे होगा।

बिना किसी उद्देश्य के शक्ति का उत्पादन उस का दुरुपयोग मात्र है।

बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो अगुआ बनना चाहते हैं और नेतृत्व को केवल नेता बनने की लालसा से हथियाना चाहते हैं। वे लोग उद्देश्य और निमित्त में परस्पर गड़बड़ी कर देते हैं और शक्ति की पूजा करते हैं जब कि उन में उस शक्ति द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य की कल्पना करने की भी योग्यता नहीं होती।

उन का नेतृत्व विनाश के अतिरिक्त और कहीं नहीं ले जा पाता।

"प्रत्येक युग में एकाध बार," एक आधुनिक लेखक ने कहा है "कोई ऐसा पुरुष अवश्य जन्म लेता है जो किसी छोटे काम को एक कोने में बैठ कर संपादन करने की चेष्टा करता है और अपने जीवन से उस के सम्बन्ध की आवश्यकता को भली भांति जान कर उसमें तन्मय हो जाता है परन्तु चौकन्ना हो कर दूरदर्शिता के साथ कार्य करता जाता है।"

हम सब अपने २ काम में ध्यान तो देते हैं परन्तु हम सदैव साथ २ दूरदर्शिता से काम नहीं लेते। यही कारण है कि अधिकतर हमारे प्रयत्न असफल हो जाते हैं।

किसी भी पुरुष को अपने काम से दूरदर्शिता और कल्पना को पृथक् न करना चाहिये। वह अपने जीवन को उचित ढंग से देखने का प्रयत्न करे और अपने प्रयत्नों को ऐसी कार्य प्रणाली के अन्तर्गत रक्खे जिस का लक्ष्य कोई निश्चित उद्देश्य का संपादन हो।

महत्त्वाकांक्षा का यही वास्तविक अर्थ है। यदि तुम्हारा छोटा

काम—चाहे उसे एक कोने में बैठ कर ही क्यों न किया जाय—कहीं ले जा सके तो अपना सारा ध्यान उसी में लगा दो।

भय केवल इसी बात में है कि दृष्टिकोण यदि संकुचित रक्खा जाय। ध्यान रहे कि जीवन लम्बा है और विश्व विशाल है, इसलिये दृष्टिकोण भी विस्तृत हो।

आप से आप चलने वाला यंत्र

इन लेखों में मैंने समय समय पर बताया है कि उपचेतना से क्या क्या काम लिये जा सकते हैं।

स्वभाव बनाने के उपाय में सहायता करने, मन को कृत्रिम भयों से विमुक्त करने, इच्छा शक्ति तथा अगणित अन्य योग्यताओं को सुदृढ़ बनाने में यह अद्वितीय है, यदि इसे बुद्धिमत्ता से प्रयोग में लाया जाय।

मनोवैज्ञानिक जिसे 'आत्म-सूचना' या 'आत्म-संकेत' कहते हैं, अर्थात् अपने मन की अपने आप को प्रेरणा, संसार में महान् शक्तिशाली शक्तियों में से एक है।

परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि यह प्रेरणा दृढ़ता से की गई हो और यह विश्वास कि इसका फल अवश्य निकलेगा उसकी सहायता पर हो।

उपचेतना ऐसे संकेतों तथा प्रेरणाओं को क्षुधातुर की भांति ग्रहण करती है और यदि ऊपर दी हुई शर्तें भी पूर्ण की गई हो तो उन्हें क्रियात्मक रूप देने का सतत प्रयत्न करती है।

इसके अतिरिक्त उपचेतना, चेतना के समान, कभी नहीं सोती। रात में भी प्रेरणा काम करती रहती है और अपनी स्थिति को दृढ बनाती रहती है।

यही कारण है कि बहुत से लोग जब किसी पुरुष को किसी कठिन समस्या का सामना करते देखते हैं तो उसे उस विषय को सोने तक भुला देने की अनुमति देते हैं।

प्रत्येक मनोवैज्ञानिक उनकी इस सम्मति का समर्थन करेगा। उपचेतना अपने आप चलने वाला एक अनथक यन्त्र है और जो कोई इस से लाभ उठाने का कष्ट उठाए सदैव उसकी सहायता करता है।

इसकी परीक्षा स्वयं कर देखो। तुम्हें केवल यही करना होगा कि सोने से पूर्व अपनी समस्या की कठिनाइयों और सुविधाओं को भली भांति सोच लो और तदुपरान्त इस विषय पर तनिक भी और न सोचो।

जागने पर प्राय: सदैव ही तुम्हें प्रतीत होगा कि उसका हल बना बनाया तुम्हारे मन में उपस्थित हो गया है, क्यों कि तुम्हारी उपचेतना यह सारा समय उस के हल पर लगी रही होगी जबकि तुम्हारा चेतन मन सो रहा था।

स्मरणीय बात यह है कि तुम अपनी उपचेतना को कभी भी निष्क्रिय नहीं रख सकते।

अत: तुम उससे विचार-पूर्वक कोई लाभ उठा सकते हो।

—:o:—

खेलने का समय

मेरे सम्मुख इस समय जब कि मैं लिख रहा हूँ, पाठकों के कई पत्र पड़े हैं जिनके उत्तर देने उचित होंगे।

"मैं इतना परिश्रम करता हूं," एक कहता है, "कि मेरे पास पढ़ने को कोई समय नहीं। सच तो यह है कि छ: महीने बीत चले हैं जब कि मैंने मनोविनोद के लिये एक पुस्तक पढ़ी थी।"

एक और कहता है कि मेरे पास खेलनेके लिये बिलकुल समय नहीं। वह एक परीक्षामे उत्तीर्ण होने की चिन्ता मे है-एक प्रशंसनीय महत्त्वाकांक्षा—और प्रत्येक क्षण वह अध्ययन में लगा देता है।

सब प्रायः यही लिखते हैं। इन पत्रों का सार यही है कि 'मेरे पास खेलने का कोई समय नहीं।'

मूर्खता के साथ बुद्धिमत्ता की गड़बड़ी करना कितना सुगम है। मेरे पत्र-लेखक इसी बात पर अभिमान कर रहे हैं कि वे शारीरिक और मानसिक यन्त्रों का दुरुपयोग कर रहे हैं।

खेलना—जिसमे में मन बहलाव के सभी साधनों को गिनता हूं चाहे वह पढना, फुटबाल खेलना, साइक्लि या मोटर चलाना, या आनन्दप्रद बातचीत करना हो—मनुष्य के लिये परमावश्यक है।

यथार्थ में यह एक अन्तःप्रेरणा है, और एक ऐसी अन्तःप्रेरणा जिसे बिना दुष्परिणामों के कदापि नहीं रोका जा सकता।

श्री गार्डन सेलफरिज के इस कथन में पर्याप्त तथ्य है कि "काम से बढ़ कर और कोई मनोरंजन नहीं" परन्तु इस उक्ति में भी इस से कम सत्य नहीं कि खेलने के समान कोई औषधि नहीं।

मानव यन्त्र को दुःख और चिन्ता के सतत धक्के से अवश्य विश्राम मिलना चाहिए। एक सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी ने जिसे कि मैं कभी जानता था अपनी वार्षिक परीक्षा के पहिले के तीन दिन क्रिकेट का खेल खेलने में बिताये—और वह खेलता हुआ घर लौटा।

परीक्षा-गृह में विश्राम के अभाव के कारण एक थके और क्लान्त मस्तिष्क के स्थान पर एक ताज़ा और उत्साहपूर्ण मस्तिष्क ने प्रवेश किया। धूप में कहीं बाहिर निकल जाओ। ताज़ा वायु में

मांस लो। और समय २ पर एक घण्टा निकाल कर खेल में व्यय करो। क्योंकि यदि तुम श्रमपूर्वक काम करो और श्रमपूर्वक खेलो तो तुम्हारा काम जैसे कि श्री सेल्फरिज कहते हैं, केवल मनोरंजन होगा।

पर अच्छा काम करने के लिये तुम्हें अवश्य अच्छी प्रकार से खेलना भी चाहिये।

पहले सोचो

यह सर्वसाधारण को विदित है कि विचार शक्ति मनुष्य को अन्य पशुओं से भिन्न बनाती है। पर विचार की क्रिया का यथार्थ अभिप्राय क्या है ?

मुझे तो यही प्रतीत होता है कि इस का अभिप्राय मनुष्य को सत्यता के यथार्थ ज्ञान को प्राप्ति के योग्य बनाना है, अथवा उसे उस काम के करने के योग्य बनाना है जिस ने उसे संसार का स्वामी बना दिया है—अर्थात् परिस्थिति के अनुसार अपनी व्यवस्था करना।

वस्तुतः जैसा कि मैंने अन्यत्र कहा है, मनुष्य की 'बुद्धि की संदेहरहित परीक्षा उस की उस तीव्र गति द्वारा हो सकती है जिस के द्वारा वह उन परिस्थितियों को जिन का वह अभ्यस्त नहीं अपने अनुकूल बना लेता है और उन पर अधिकार जमा लेता है। और भी स्पष्ट शब्दों में, मुझे मनुष्य की बुद्धि को उस सुगमता से मापने पर विश्वास है जिस सुगमता से वह कठिनाइयों पर विजयी होता है।

सचेत विचार रूपी इस शक्तिशाली शस्त्रको प्रयोग में लाने की एक ठीक और एक गलत विधि भी है। हम या तो आंखें बन्द कर के, मुक्त-हस्त से, इसका अपव्यय कर सकते हैं या एक

सिद्धहस्त शिल्पी की भांति उसी प्रकार इस का पथनिर्देश कर सकते हैं जिस प्रकार वह अपने सूक्ष्म यंत्र को चलाता है और वश में रखता है।

हमें अपनी कठिनाइयों को रौंदने के लिए विवेकशून्य प्रयत्न द्वारा भारी भूलें कदापि न करनी चाहियें। एक बच्चा या विचार-हीन पशु भी ऐसा कर सकता है।

हमें प्रत्येक अवस्था में केवल उन्हीं शक्तियों, विचारों और कल्पनाओं को प्रयोग में लाना चाहिये जिन से निश्चित परिणामों के मिलने की आशा हो।

इसी कारण पूर्व विचार परमावश्यक है। कठिनाई उपस्थित होने पर स्थिति के शान्त अवलोकन और प्रश्न के सभी पक्षों को निरूपण करने की चेष्टा से बढ़ कर लाभ-प्रद और कुछ भी नहीं। ठीक इसी काम के लिये मनुष्य को चेतन विचारशक्ति प्रदान की गई है। ऐसा करने की क्षमता ही एक बुद्धिमान् मनुष्य को अपने बुद्धिहीन सहकारी से पृथक् दर्शाती है।

इस प्रकार स्थिति के विवेकपूर्ण अवलोकन में बिताया हुआ एक घण्टा काम करने के अवसर पर कई घण्टों को बचा सकता है।

—:o:—

थकान की अनुभूति

प्रत्येक व्यक्ति जो मन से या शारीरिक पट्ठों से काम करता है कुछ समयोपरान्त थक जाता है। मानव यन्त्र बिना किसी विरोध के कुछ परिमित काम ही करेगा।

मानसिक थकावट भी, वस्तुतः, शारीरिक थकावट के तुल्य ही होती है। जहां तक हमें बोध है, मन अनथक काम करने वाला है, परन्तु एक श्रान्त शरीर में यह भली भांति काम नहीं कर सकता।

थकावट या तो स्थानीय हो सकती है या व्यापक। एक शारीरिक काम करने वाला जो कुछ विशेष पट्ठों से काम लेता है, अन्त में उन्हें थका कर छोड़ेगा। ऐसी अवस्था में व्यवसाय का परिवर्तन उतना ही प्रभाव दिखाता है जितना कि पूर्ण विश्राम।

व्यापक थकान अधिक चिन्ताजनक होती है। ऐसी अवस्था में व्यवसाय का परिवर्तन उसे और भी बढ़ा देगा।

'थकान की ऐसी अनुभूति' शरीर में विष का होना व्यक्त करती है। रक्त दूषित द्रव्यों को निकाल फेंकने की अपेक्षा स्वयं ही शीघ्र दूषित हो जाता है। ऐसी अवस्था में शरीर शुद्धि के लिए विश्राम से बढ़कर कोई वस्तु नहीं।

थकावट की एक मात्र औषधि विश्राम ही है। अन्य औषधियाँ तथा उत्तेजक पदार्थ केवल विफल ही नहीं होते बल्कि हानिकारक सिद्ध होते हैं।

यह सच है कि कुछ काल के लिए वे पुरुष को अधिक उद्यमशील बना सकते हैं। परन्तु उनका प्रभाव शीघ्र नष्ट हो जाता है और वे थके हुए पट्ठों तथा नाड़ियों को पहले की अपेक्षा अधिक थका कर छोड़ देते हैं।

सब से सुगम विधि है थकान के आक्रमण को रोकना। काम करते समय खूब परिश्रम करो परन्तु बीच बीच में छुट्टी भी अवश्य मनाओ।

और जब तुम विश्राम करो—यदि यह केवल कुछ क्षणों के लिए हो—तो भली भांति विश्राम करो।

शरीर और मन दोनों को ढीला छोड़ दो। यन्त्र को स्वस्थावस्था में आने का यथार्थ अवसर दो। एक घंटे के परिश्रम के पश्चात् पांच मिनटों का विश्राम फिर एक घंटे का परिश्रम और पुनः पांच मिनटों का विश्राम एक अच्छा उपाय है।

यह एक बड़ी विस्मयोत्पादक बात है कि केवल पांच मिनटों में ही थका हुआ शरीर या मन किस प्रकार फिर पूर्वावस्था को प्राप्त हो जाता है।

परिश्रम के साथ साथ समय समय पर सुव्यवस्थित विश्राम 'थकान की अनुभूति' से बचने का सर्वोत्तम उपाय है।

अपने आप के लिए सोचो !

इस लेखमाला के प्रारंभिक लेखों में मैंने स्वभाव बनाने, विचारों के विचारों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने और उनको हृदय पर पड़ी छापों के साथ मिलाने की आवश्यकता पर लिखा था। परन्तु इस विधि का दूसरा पक्ष भी इतना ही आवश्यक मानसिक व्यापार है। मानव मस्तिष्क में, पशुओं के मस्तिष्क से भिन्न विग्रह करने की एक असीम शक्ति है।

यह विग्रह करने की शक्ति अर्थात् पदार्थों को उनके खण्डों में विभाजित करना—हमारी तर्क-शक्ति का आधार है। यदि हम विग्रह न कर सकते तो हम उन समस्याओं का हल न सोच सकते जिनका हमें सामना करना पड़ता है।

मेरे विचार में एक साधारण मनुष्य के लिए अत्यन्त कठिन बात है सोचना—ठीक ठीक सोचना या तर्क के अनुसार सोचना ही नहीं, बल्कि केवल सोचना।

हम सब के मस्तिष्क हैं; परन्तु हम मे से बहुत कम इसे कार्य-सिद्धि के लिए प्रयोग मे लाने का कष्ट उठाते हैं।

कार्य-सिद्धि के लिए सोचने का अर्थ है अन्त मे कारण और कार्य वा परिणाम के रूप में सोचना और ठोस तथ्य के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु द्वारा इधर उधर न भटकना।

अस्पष्ट छाप, संदिग्ध विचार और धुंधली कल्पनायें सभी मानसिक आलसी के चिह्न हैं। विचारशील मनुष्य इन संदिग्ध विचारों को उनकी उचित सीमाओं के अन्दर सीमित करने के लिए उनके विश्लेषण में सदा व्यस्त रहता है।

इसी प्रकार सच्ची विचारशक्ति से सम्पन्न पुरुष भी शान्तिपूर्वक गम्भीरता से और पूर्णतया निष्पक्ष भाव से सोच सकता है। यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते, या शान्त चित्त से तर्क नहीं कर सकते—जो कि केवल ऊंचे सोचने का रूप है—तो तुम वास्तव में सोच नहीं सकते।

शान्तचित्त से विग्रह करने की शक्ति का अभ्यास करो। उदाहरण के लिए कुछ राजनीतिक वक्तृतायें ले लो। बैठ जाओ और यह खोज निकालो कि वक्ताओं ने यथार्थ में क्या कहा—जो कुछ वे कहते हुए प्रतीत होते थे उससे बिलकुल पृथक् वास्तविक सत्य ढूंढो।

परन्तु स्मरण रक्खो कि कोई भी ठीक प्रकार से नहीं सोच सकता यदि उसका मस्तिष्क भली भांति ज्ञान से पूर्ण नहीं।

सदैव बुद्धि ही बल है। ज्ञान बढ़ाओ। सब विषयों की पुस्तकें पढ़ो।

रचना-शक्ति को बढ़ाना

इन लेखों में एक दो बार मैंने अपूर्व रचनाशक्ति को प्राप्त करने की चेष्टा की आवश्यकता के विषय में लिखा था। अब एक पत्र-लेखक ने स्वाभाविक रूप से, यही प्रश्न पूछा है कि 'क्या कोई व्यक्ति नई रचना करने की शिक्षा प्राप्त कर सकता है? यदि हां तो इस को सीखने की सर्वोत्तम विधि क्या है'।

मौलिकता, आविष्कार करने की शक्ति, या उत्पादकता—इस

किसी भी नाम से स्मरण करलें—निश्चय ही अधिकांश में अभ्यास द्वारा प्राप्त की जा सकती है। परन्तु यह भी सत्य है कि कुछ लोगों की प्रवृत्ति निस्सन्देह अन्य लोगों की अपेक्षा जन्म से ही मौलिकता की ओर होती है।

मूल रूप में, रचनाशक्ति या मौलिकता उस क्षमता या योग्यता का नाम है जिसके द्वारा सामान्य विचार तथा कल्पनाओं को सुव्यवस्थित करके एक नये ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।

अतः निष्कर्ष यह निकला कि सर्वप्रथम विचारों का एक भण्डार होना चाहिये। पढ़ो, निरीक्षण करो और प्रत्येक पदार्थ या पुरुष से कुछ सीखो—कभी भी अपने मस्तिष्क को नये विचारों से पूर्ण करने में मत रुको।

दूसरे, किसी विशेष विषय का अध्ययन करो और उस में पारंगत हो जाओ। सामान्यतः कोई भी मौलिक नहीं हो सकता। मौलिकता या रचनाशक्ति को किसी विशेष विषय में बढ़ाओ यथा यंत्र-विद्या, औषधि, साहित्य इत्यादि में। अपनी रुचि के अनुसार कोई विषय चुन लो, उसी में तन्मय हो जाओ और तद्विषयक जितना ज्ञान उपार्जन हो सके कर लो। तीसरे, सदैव नये विचारों का स्वागत करो।

विचारों को परस्पर संयुक्त करने वाले सिद्धांतों तथा समानताओं का निरूपण करो। बहुधा एक मौलिक विचार या आविष्कार का मूल आधार भली प्रकार से ज्ञात तथ्यों को संयुक्त करने वाले अन्तर्निहित सिद्धांत का प्रकाशन होता है।

रचनाशक्ति को बढ़ाने का इच्छुक सदैव विश्लेषणात्मक रीति से सोचे। वह सदा ही यही प्रश्न करने को उद्यत हो कि 'इसका कारण क्या' ?

यदि न्यूटन सेब को भूमि पर गिरते देख कर इसी प्रश्न को

न पूछता तो वह पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के नियम को कभी न खोज पाता।

सादृश्यता की रीति के अनुसार भी तर्क करना सीखो। समानताओं को ध्यानपूर्वक देखो और एक प्रकार के तथ्यों के सिद्धांत को दूसरी प्रकार के तथ्यों को समझने के लिये प्रयोग में लाओ। इस प्रकार के उपायों से ही कई नये आविष्कार किये गये।

—०—

मस्तिष्क और मस्तिष्क की बनावट

कई बार मुझ से यह प्रश्न पूछा गया है कि मैं मस्तिष्क-विज्ञान में विश्वास रखता हूं या नहीं अर्थात् मैं इसे संभव समझता हूं कि नहीं कि एक मस्तिष्क-वैज्ञानिक मस्तिष्क के आकार आदि से किसी का चरित्र पढ़ सकता हो।

मस्तिष्क-विज्ञान में मुझे किंचिन्मात्र भी विश्वास नहीं यद्यपि मैं यह मानता हूं कि कई मस्तिष्क-विद्या-विशारद चरित्र पढ़ने में बड़े निपुण होते हैं।

परन्तु वे रेखायें पढ़ कर या आकार देखकर ऐसा नहीं कर सकते। वे इसलिए चरित्र पढ़ने में सफल हो जाते हैं क्योंकि वे सिद्धहस्त निरीक्षक होते हैं और मानव स्वभाव के कुशाग्रबुद्धि विद्यार्थी होते हैं।

यह बात विदित है कि मस्तिष्क की कुछ विशेष क्रियाएँ मस्तिष्क के कुछ विशेष भागों से सम्बन्ध रखती हैं—यथा दृष्टि, सुनना, स्पर्श, परिचालक-शक्ति इत्यादि। तो भी, इसका कोई कारण दिखाई नहीं देता कि कपाल पर ये या अन्य बातें किन्हीं लक्षणों द्वारा व्यक्त हों।

जब इस बात का झूठा दावा किया जाय कि भाववाचक या

पेचीदा वस्तुएं जैसे कि 'बच्चों का प्यार', 'अन्तःकरण की शुद्धता' या 'व्यक्तित्व' कपाल पर अंकित हैं तो मस्तिष्क-विज्ञान एक ढोंग हो जाता है। कपाल की लम्बाई चौड़ाई और तदनुसार मस्तिष्क के परिमाण का भी इस विषय से कोई सम्बन्ध नहीं। इस का संबंध तो मस्तिष्क तल पर उठने वाली तरंगों से है— और उनकी निश्चय ही कोई बाह्य सूचना नहीं मिलती।

यह कहने की योग्यता प्राप्त करने के लिए कि धीर और दृढ़ मुख व्यावहारिक शक्ति का सूचक है, या कोमल और लचकीले हाथ सुशिक्षित, संस्कृत और सूक्ष्मग्राही चरित्र के द्योतक हैं, मनुष्यों का भली भांति निरीक्षण करना और अच्छी स्मरण-शक्ति का होना आवश्यक है। तब भी निरीक्षक प्रत्येक बार ही ठीक न निकलेगा।

नहीं, मानवयन्त्र का समझना इतना सरल और सुगम नहीं जितना हमारे मित्र मस्तिष्क-विद्या-विशारद समझते हैं। विशिष्ट रूप से यह वर्णन करने के लिए कि एक व्यक्ति गणित का विशेषज्ञ और दूसरा संगीत-विद्या में निपुण क्यों है, अस्थियों के विशेष ढांचे के निर्माण से अत्यधिक ज्ञान की आवश्यकता है।

मस्तिष्क विद्या का ज्ञाता बहुधा स्वभाव से ही अच्छा मनोवैज्ञानिक होता है। परन्तु यदि उसे सफल मस्तिष्क-विद्या विशारद बनना हो तो उसके लिए कुशल अनुमानकर्त्ता होना भी अत्यावश्यक है।

———

महत्वपूर्ण छोटी छोटी बातें

मनुष्य की मानसिक-शक्ति की परीक्षा बड़ी बड़ी बातों से नहीं होती। मानसिक-शक्ति की सच्ची परीक्षा तो इस बात में है कि छोटी छोटी वस्तुओं पर दृढ़ अधिकार रखने और अगणित अन्य बातों को निर्विघ्नता से सुव्यवस्थित करने और उनका एकीकरण करने की योग्यता कितनी है।

यदि सफलतापूर्वक ऐसा किया जा सके तो बड़ी बड़ी बातें अनायास ही सिद्ध हो जाती हैं। यह कहा जा सकता है कि बड़ी बात स्वतः सिद्ध हो जाती है क्योंकि प्रत्येक बड़ी बात में अनेक छोटी छोटी बातें होती हैं जिन से वह बनी हुई होती है।

एक सुशिक्षित और एक अशिक्षित मन में केवल इतना ही अन्तर होता है।

दैनिक काम का अनियमित होना, निरन्तर चिन्तित रहना क्योंकि ठीक समय पर कोई पत्र नहीं मिल पाता, काम की अव्य-वस्था होने के कारण उसका ढेर लग जाना और अमूल्य समय का व्यर्थ नष्ट होना—इन छोटी छोटी बातों से, जो कि अपने आप में कोई महत्व नहीं रखतीं परन्तु सगठित रूप में अत्यधिक महत्व रखती हैं, उत्पन्न हुआ चिड़चिड़ापन इकट्ठा हो कर मान-सिक यन्त्र को अशक्त बना देता है और उसकी कार्यक्षमता का ह्रास कर देता है।

संसार के महापुरुष, चाहे वे किसी भी कार्य-क्षेत्र में काम करते हों, सभी एक प्रकार के होते हैं। वे उन लोगों में से होते हैं जिन्हें ब्यौरे से बड़ा अनुराग होता है। कोई भी वस्तु केवल कष्टकारक नहीं होती, कोई भी वस्तु इतनी तुच्छ नहीं कि उसमें

उनके व्यक्तिगत ध्यान की आवश्यकता न हो; और उन्होंने अपने आप को इतना सुशिक्षित कर लिया होता है, कि वे हस्तगत काम में अपना सारा ध्यान लगा सकते हैं चाहे वह कितना ही तुच्छ क्यों न हो।

जो कुछ भी वे करते हैं अपनी पूरी शक्ति लगा कर करते हैं। वे इस छोटी वस्तु वाले मनोविज्ञान को भली भांति समझते हैं।

फलतः उपर्युक्त चिड़चिड़ेपन से वे बचे रहते हैं। उनके मस्तिष्क सुगठित यन्त्रों की भांति ठीक काम करते हैं। उनकी सम्पूर्ण मानसिक शक्ति बीसियों व्यर्थ के कामों में क्षय होने के स्थान पर एक प्रधान दिशा की ओर अग्रसर होती है।

परिणाम यह निकलता है कि वे वहां पहुंचने में सफल हो जाते हैं। वे उस बड़ी बात को समय आने पर अच्छी प्रकार से कर लेते हैं क्योंकि वे छोटी बात को ठीक प्रकार से करना सीख चुके हैं।

भयावह विवरण

पद्धति, व्यवस्था, मन को विषयानुक्रमशिक्षा की भांति प्रयोग में लाने की योग्यता—ये सभी बातें उपलब्ध हो सकती हैं यदि चित्त को एकाग्र करने की क्षमता प्राप्त हो जाय। छोटी २ बातें या तो अत्यधिक मानसिक विक्षुब्धता का स्रोत बन सकती हैं या महत्त्वपूर्ण बातों की प्राप्ति का साधन बन सकती हैं।

यह तो इस बात पर अवलम्बित है कि मन का प्रयोग बैसाखी की भांति किया जाता है या विद्युत-उत्पादक यन्त्र की न्याईं।

यदि पहले की भांति तो इस पर टीका टिप्पणी की कोई आवश्यकता नहीं; परन्तु यदि दूसरी रीति से, तब यह परमावश्यक हो

जाता है कि यन्त्र को स्निग्ध और अवाधरूप से सवेग गतिशील रखा जाय।

धूल का एक छोटा सा धब्बा भी सूक्ष्म यन्त्र की मृदु और मसृण गति में अड़चन बन सकता है। छोटी २ बातें या तो धूल या मन के लिये तेल प्रमाणित हो सकती हैं। और यह निर्भर है हमारे विचारकोण पर।

यह विचारकोण भी कुछ अपना महत्व रखता है। संसार के महापुरुषों में वही लोग हैं जो दूरदर्शी हैं, जो छोटी २ बातों के अन्तर्गत बड़े २ सिद्धान्तों को देख सकते हैं।

उनमें कल्पना-शक्ति होती है, और रचना के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली कल्पनाशक्ति विवरण सम्बंधी चिड़चिड़ेपन को दूर कर देती है, क्योंकि यह छोटी बातों की मार्मिक आवश्यकता व्यक्त कर देती है यदि अन्त में बड़ी बात की सिद्धि की चाह हो।

छोटी बात के मनोविज्ञान का एक दुःखद पक्ष भी है। यह दूरदर्शिता को दूर करने की आश्चर्यजनक शक्ति रखता है, यदि मन को भली भांति तर्कपूर्ण सोचना नहीं सिखलाया गया। खाई जाने वाली छोटी लाल समुद्री मछली की भांति छोटी बात महत्व में सर्वोपरि है।

कदाचित् ऐसा कहना निरर्थक है, परन्तु जिन्हें यह सुनने की इच्छा ही है, वे सुन लें कि तर्क के अनुसार सोचना सीखने से पहले मनुष्य को केवल सोचना ही सीखना चाहिये।

यह आवश्यक है कि मनुष्य तर्कानुसार सोचने, तथ्यों को तोलने और उनका यथार्थ मूल्य आंकने की योग्यता प्राप्त करने, परमावश्यक बात को पहचानने और उसको अनावश्यक बात से पृथक करने, की शक्ति प्राप्त करे।''

मन और जन समुदाय

मनुष्य की मानसिक रचना की यह एक विचित्रता है, कि यद्यपि एक व्यक्ति स्वस्थचित्त, न्यायोचित व्यवहार करने वाला और उत्तरदायित्व संभालने के योग्य होता है, तोभी जन-समुदाय में मिल कर वही व्यक्ति विवेकशून्य और बिना किसी उत्तरदायित्व के हो जाता है।

एक सार्वजनिक वक्ता को भीड़ के सामने वक्तृता देते हुए ध्यानपूर्वक सुनो; एक राजनीतिज्ञ को श्रोतागणों के सामने किसी निश्चित उद्देश्य से व्याख्यान देते हुए देखो! उनमें से कोई भी उसी जन-समुदाय के किसी एक व्यक्ति से पृथक् रूप में उसी प्रकार बातचीत करने का साहस न करेगा।

भीड़ का मन या जनसमुदाय की मानसिक अवस्था एक ठोस वस्तु है और उसका भी एक व्यक्ति के मन की भांति विश्लेषण हो सकता है, यद्यपि उस का निर्माण अन्य कई व्यक्तियों के मन से हुआ है।

तब क्या कारण है कि स्वस्थचित्त पुरुष भीड़ का एक अंग बनने पर अपने तर्क और विवेक को खो देते हैं?

इसका बड़ा कारण उसी काम को करने की स्वाभाविक प्रेरणा है जिसे अन्य लोग कर रहे हों। कोई भी विलक्षणता दर्शाने का इच्छुक नहीं होता। हम सब के हृदयों में अपने साथियों को रुष्ट कर देने या उन से तिरस्कृत होने का भय घर किये हुए है। परंपरागत विचार, व्यवहार, लोकाचार—ये बड़ी शक्तिशाली शक्तियां हैं जिनसे हम सदा भय खाते हैं, चाहे हम इनके विरुद्ध कुछ भी क्यों न कहें।

इस प्रकार की स्वाभाविक प्रेरणा की कई हानियां तथा कई

लाभ हैं। यह प्रेरणा एक सुव्यवस्थित समाज का आधार है और होनी भी चाहिए, परन्तु यह कोई कारण नहीं कि हममें से कोई भी भेड़ों का सा व्यवहार करे और आंखें बंद करके जिस किसी नेता के पीछे चल पड़े।

एक भीड़ में भी अपने व्यक्तित्व को मत छोड़ो। इस संकट का ज्ञान होना भी इस से बचने में पर्याप्त लाभकारी सिद्ध होता है।

अपनी तर्क शक्तियों को अपने वश में रक्खो और सदैव अपने हित के लिए स्वयं सोचो।

जन समुदाय तो केवल एक विचार-हीन पुरुष के तुल्य है जो किसी भी उपद्रवी तथा अस्थिर और चंचल पुरुष के पीछे चल पड़ता है।

तुम्हारे आत्म सम्मान की मांग है कि तुम एक भीड़ में भी उतने ही विवेकपूर्ण बने रहो जितने कि अपने घर में बने रहते हो।

टैनिस के खेल की कुछ गुप्त बातें

मेरे हजारों पाठक टैनिस का खेल खेलने के आदी होंगे। कई तो इस खेल में उन्नति प्राप्त करने की इच्छा करते होंगे और उनसे भी अधिक इसको सीखने के लिए अभी आरंभ करने वाले होंगे।

यह लेख उनके लिए है। यह उन सब के लिए भी है जो स्वभाव स्थापित करने या कुशलता बढ़ाने की चेष्टा कर रहे हैं।

टैनिस के खेल में गेन्द को ठीक मारने का ढंग स्वभाव में परिणत हो जाना चाहिए। अतः यह आवश्यक है कि भली भांति इस कार्य में जुटा जाय।

तुम शक्ति द्वारा और अभ्यास द्वारा स्वभाव भी बना सकते हो और टेनिस को अच्छी तरह खेलना भी सीख सकते हो। यदि तुम बुद्धिमान हो, तुम सर्वोत्तम विशेषज्ञ से शिक्षा और सम्मति लेने की चेष्टा करोगे।

सतर्क गति—जो टेनिस के खेल का प्राण है—निरर्थक गति को अधिकांश में दूर करने पर आश्रित है, और इसी विषय में सम्मति देकर एक विशेषज्ञ-आप के समय और शक्ति को बचा सकता है।

विशेषज्ञों की सम्मति पा लेने पर ही अभिमान मत करो। प्रत्येक अच्छे खिलाड़ी को भली भांति देखने और सुनने से भी तुम्हें लाभ हो सकता है।

यदि तुम्हारी उन्नति की गति मन्द है या तुम अनुभव करो कि कई अवसरों पर तुम पिछड़ते से दिखाई देते हो, हृदय मत हारो।

भले ही हम कोई स्वभाव बनाने की चेष्टा करते हों, प्रगति में शिथिलता के ये सुव्यक्त अवसर आते ही हैं, और इन से बचने का कोई मार्ग नहीं।

परन्तु यथार्थ में हम अनजाने ही कुशलता बढ़ा रहे होते हैं। प्रगति की शिथिलता इतनी वास्तविक नहीं होती जितनी दिखाई देती है।

जब हम उन्नति के मार्ग में अग्रसर न होने के कारण चिन्ता कर रहे होते हैं, हमारा नाड़ीमण्डल, जो कुछ वह सीख चुका होता है, उसे पचाने में तल्लीन होता है और उन्नति की ओर डग भरने की तैयारी में संलग्न होता है।

और इस से पूर्व कि हम यह जान पायें हम ने कितनी उन्नति

की है हम अपने आप को अन्त में समुन्नत पाते हैं और सदा से कहीं अच्छा खेलते देखते हैं। वास्तव में—

'जिसे रात दिन काम से है लगाव
जरा भी नहीं काहिली का खिंचाव।
जिसे है सदा एक धुन एक चाव
वही डालता दूसरों पर प्रभाव ॥'

सजीव यन्त्र रचना

यद्यपि मैंने इस सम्पूर्ण लेख-माला को 'मानव-यन्त्र' का नाम दिया है और मन को निरन्तर एक यन्त्र कह कर सम्बोधित कर रहा हूं परन्तु इसमे पूर्ण सत्य नहीं।

मनुष्य का एक महत्वपूर्ण पक्ष भी है जो उसे यन्त्र मात्र से निश्चित रूप से पृथक् करता है। उसे कितना ही दोष-रहित क्यो न बना लो, तुम एक यन्त्र मे कार्य में प्रवृत्त करने वाली शक्ति नहीं डाल सकते और न ही तुम उसमें व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की भावना डाल सकते हो। संसार मे एक भी ऐसा व्यक्ति न होगा जो कार्य मे प्रवृत्त करने वाली शक्ति और उत्तरदायित्व की भावना मे विश्वास न रखता हो।

राज्य-नियमों के भवन की नींव यह कल्पना है कि प्रकृतिस्थ पुरुष अपने कामों के लिए उत्तरदायी होते हैं।

यदि एक व्यक्ति को किसी काम के ढूढने की इच्छा हो तो वह उस समय की संतोषपूर्वक प्रतीक्षा नहीं करता रहता जब कि प्राकृतिक शक्तियों का यंत्र उसे उठा कर उसे इच्छित काम के स्थान पर बिठला दे। वह क्रियाशील हो जाता है और इच्छित काम को पाने की चेष्टा करने लग पड़ता है। वह दृढतापूर्वक

व्यक्तिगत अन्तः प्रेरणा के महत्त्व को स्वीकार करता है, और विश्वास रखता है कि आलस्य की अपेक्षा क्रिया और शक्ति उसे उस के निश्चित लक्ष्य की ओर शीघ्र ले जायेंगे।

'स्वतन्त्र इच्छा' नाम की कोई वस्तु है या नहीं यह विषय हम दार्शनिकों के वाद-विवाद के लिए छोड़ देते हैं।

अनुभव-जन्य तथ्य मनुष्य की इच्छा की स्वतन्त्रता को उसी प्रकार प्रकट करते हैं जिस प्रकार वे आकर्षण शक्ति के नियम को प्रमाणित करते हैं।

यह मानना ही पड़ेगा कि हम इसे समझा नहीं सकते। परन्तु आकर्षणशक्ति के नियम को भी तो हम समझाने में असमर्थ हैं। हमें तथ्यों को मानना ही होगा।

यह विश्वास कि हम ऐसी स्थिति में हैं जिसके अनुसार हम स्वेच्छापूर्वक किसी काम को करने या न करने में स्वतंत्र हैं, निस्सन्देह जीवन का एक हितकारी नियम है।

विवेकपूर्ण और न्यायोचित आचरण करने के लिए ऐसा विश्वास कि मनुष्य अपने कर्म का उत्तरदाता स्वयं है, एक आवश्यक पथ-प्रदर्शक है।

ऐसे सिद्धान्त की आड़ लेना, जो स्वतन्त्रता और उत्तरदायित्व को स्वीकार नहीं करता, मानसिक आत्मघात करना है।

सफलता का कारण है कर्म और यह हमारे अपने अधीन है कि हम देखें कि जो कर्म हम करें वह उचित हो।

व्यावहारिक ज्ञान

मनुष्यों के वर्णन के सम्बंध में सब से अधिक हम यह बात सुनते हैं कि उनमें 'व्यावहारिक ज्ञान' बहुत है।

'व्यावहारिक ज्ञान' में हमारा क्या तात्पर्य होता है, अस्पष्ट रूप से यह हम सब को विदित है। आओ हम देखें कि इसका वास्तविक अर्थ क्या है, क्योंकि चरित्र के इस प्रशंसनीय लक्षण को प्राप्त करना संभव है।

व्यावहारिक ज्ञान एक ऐसे तथ्य-ग्राही मन की सूचना देता है, जो किये जाने वाले कर्म से सम्बन्ध रखने वाली सभी छोटी मोटी बातों को हृदयंगम कर सके, और किसी प्रकार से भी लक्ष्य से इधर उधर न भटके।

यह प्रखर निरीक्षणशक्ति तथा आवश्यक और अनावश्यक में भेद करने की योग्यता का भी सूचक है।

यह योग्यता उस सामर्थ्य की ओर अग्रसर करती है जो व्यवहार कुशल पुरुष को थोथी कल्पना करने वाले से पृथक दर्शाती है—यह आगे देखने और तथ्यों तथा तर्कों के आधार पर कारण से फल पर्यन्त कार्य-क्रम निर्माण करने की शक्ति है।

निरीक्षणशक्ति का अच्छी स्मरण-शक्ति के साथ सम्मिश्रण स्वतः एक सीमा तक व्यावहारिक ज्ञान को उत्पन्न किए बिना नहीं रह सकता।

इच्छाशक्ति, स्वभावतः, व्यावहारिक ज्ञान की उत्पत्ति में सहायता देती है। एक सुशिक्षित और सबल इच्छा का अर्थ होगा निरन्तर परिश्रम करने की योग्यता, मनोविकारों का नियन्त्रण और गम्भीर तथा निष्पक्ष तर्क के प्रकाश में प्रेरणाओं और निश्चयों का पर्यालोचन।

अन्य तत्वों के समान ही एक आवश्यक और महत्वपूर्ण तत्व अपने साथियों के साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार है, जो कि सदैव व्यावहारिक ज्ञान वाले पुरुष में मिलता है। मानव स्वभाव का वह विस्तृत ज्ञान, जो व्यक्ति को मानव समस्याएं व्यावहारिक ढंग से सुलझाने की शक्ति प्रदान करता है, अन्य किसी प्रकार से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।

मैंने मनोविकारों पर नियन्त्रण के बारे में लिखा है; मैं पुनः इसे बलपूर्वक समझाना चाहता हूं।

मेरे विचार में आत्मसंयम व्यवहार-कुशल पुरुष का प्रधान लक्षण है। क्योंकि उस संकटकालीन शांति का वह मूल है जो इस के स्वामी को सभी की दृष्टि में ईर्ष्या और प्रशंसा का पात्र बना देती है।

आशावाद

मेरा विचार है कि स्थूल रूप में हम प्रत्येक व्यक्ति को आशावादी या निराशावादी की श्रेणीमें रख सकते हैं। दोनों में से कोई एक होना मानव प्रकृति है। कदाचित् कुछ ऐसे पुरुष भी हैं अथवा हो सकते हैं जो किंचिन्मात्र भी ठोस तथ्यों से पृथक् होना स्वीकार नहीं करते परन्तु वे तो सोचने के यंत्र मात्र हैं जिनमें मानुषी गुणों का पूर्णतया अभाव है।

आशावाद और निराशावाद दोनों की जननी एक ही है चाहे दोनों के लक्षण कितने ही विपरीत हैं। वे विवेक शून्यता से उत्पन्न होते हैं।

निराशावादी इस जीर्णशीर्ण भ्रांति को सत्य समझने में व्यस्त रहता है कि जो कुछ हो रहा है निरन्तर ऐसे ही रहेगा और उसमें

परिवर्तन होना सम्भव नहीं। वह बड़ी सतर्कता से उन तथ्यों को छोड़ता जाता है जो उसके इस कुतर्क को निर्मूल कर सकें।

आशावादी भी इस विषयमें उससे कम भूल नहीं करता। वह भी बड़ी सावधानी से अपने मनोनीत तथ्यों का संग्रह करता है।

'सब वस्तुएं सदैव समुन्नत होती रही हैं' वह कहता है 'अतः वे सदैव उन्नति के पथ की ओर अग्रसर होंगी"।

वस्तुतः उसका अनुमान भी उतना ही दोषपूर्ण है जितना एक निराशावादी का। परन्तु वह एक सुखी और आनन्दपूर्ण पातकी है और यही उन दोनों में महान् अन्तर है।

यह संसार आशावादी प्राणियों पर ही आश्रित है। उन्हें कभी अनुभव ही नहीं होता कि कब उन की हार हुई। वास्तव में वे कभी भी हार स्वीकार नहीं करते।

वे साहस, आशा और सफलता की किरणें बिखेरते हैं; वे अपने संकल्पों और विश्वासों द्वारा अन्य लोगों को प्रभावान्वित करते हैं। और अन्त मे संसार का मुख यथार्थ मे बदल देते हैं।

जब कि एक आशावादी भविष्य को समुज्ज्वल बनाने के लिए अतीत पर दृष्टिपात करता है, एक निराशावादी भविष्य की ओर इस लिए देखता है कि वह अतीत पर आंसू बहाए।

क्योंकि हम में से कोई भी एक दूसरे पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता अतः मैं सदा आशावादी का ही स्वागत करूंगा। सम्भव है कि वह भूलें करे, परन्तु उसका आदर्श सदैव यही होता है कि "उत्तरोत्तर उन्नति" की जाय।

अपने जीवन रूपी छकड़े को किसी महान् उद्देश्य से बांध कर आगे बढ़ो; पंक मे पड़ा रहने देने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है।

आन्तरिक बल

जब से जगद्विख्यात पुरुष और स्त्रियों के चरित्र इतिहास के पन्नों में उन पुरुषों के लिये लिखे गये जो उन के पदचिन्हों पर चले, मनुष्य की आत्मा के भीतर छिपे हुए आन्तरिक बल के अदृश्य भण्डार आश्चर्य उत्पत्ति के स्रोत बने हुए हैं।

शल्यशास्त्र का एक पण्डित शरीर और मस्तिष्क की चीरफाड़ कर सकता है, नाड़ियों तथा तंतुओं को नंगा कर सकता है, तुम्हें दिखा सकता है कि यन्त्र कैसे काम करता है और इसकी छोटी छोटी बातों को समझा सकता है।

परन्तु अन्त में एक ऐसी वस्तु आ जाती है जिसका वह विश्लेषण नहीं कर पाता। मांस और रक्त की पृष्ठभूमि में इस सारी शरीर रचना का एक प्रधान आधार है--आत्मा या जीवन इसे आप किसी भी नाम से पुकारें।

हम बड़ी सुगमता से मन और शरीर के बारे में बातें कर लेते हैं परन्तु मानव यन्त्र की वास्तविक पहेली अभी तक निगूढ़ है।

शक्ति का एक ऐसा स्रोत है जो मृत्यु का भी दृढ़तापूर्वक सामना करने का आदेश देता है। कई तो इसे दृढ़ विश्वास कहते हैं और कई अन्तः करण; कई उपहास करते हैं और कई प्रशंसा। जो समझते हैं वे शान्तिपूर्वक गुणगान करते हैं।

प्रत्येक पुरुष और स्त्री में कहीं न कहीं एक ऐसा बिन्दु है जिसके परे वह नहीं जायगा। प्रयत्न करना और समझाना व्यर्थ है। यह तो व्यक्तिगत बात है। परन्तु प्रत्येक पुरुष को, जीवन में कभी न कभी, यह शक्ति की आवाज़ बलपूर्वक अपना आदेश दे जाती है।

आन्तरिक बल यदि सच्चा और स्वार्थ-रहित हो तो

मानव-यन्त्र से उत्पन्न होने वाली शक्तियों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तथा अमूल्य है।

आन्तरिक बल एक ऐसा उत्तोलक दण्ड है जो समस्त संसार को सदा उन्नति की ओर अग्रसर करता है।

सार्वजनिक विचार बहुधा उपहास करता है, साथी हंसी उड़ाते हैं, परन्तु दृढ़ विश्वास वाला धीर पुरुष तनिक भी विचलित नहीं होता। वह आगे ही बढ़ता जाता है*।

*निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

अपने आन्तरिक बल को समुन्नत करो। संसार को इसकी अत्यावश्यकता है।

मानसिक विद्रोह

राजनीति तथा अर्थशास्त्र के विचारकोण से संसार आज कल एक निराशाजनक स्थान बना हुआ है। सब व्यवस्था टूटती हुई प्रतीत हो रही है और विदित होता है कि कोई भी इस विनाश को रोकने में समर्थ नहीं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से शासकवर्ग तथा शासित प्रजा दोनों ही इस उपद्रव के केन्द्र बने हुए हैं। मनुष्य जाति परिस्थितियों को वश में रखना छोड़ चुकी है।

हम सभी स्वेच्छानुसार भाग्य के शिकार बनने पर तुले हुए हैं।

यह सब कुछ असत्य है। यह एक अनर्थकारी असत्य है क्यों कि मनुष्य में परिस्थितियों को वश में रखने, अपना भविष्य

स्वयं निर्माण करने और अपना वर्तमान सुधारने की भी शक्ति है।

एक जाति, एक व्यक्ति के समान ही, इच्छाशक्ति, अनुभव से सीखने की योग्यता, और संसार कुरूप बनाया जायगा या सुन्दर, यह निर्वाचन करने की शक्ति रखती है।

आज कल जो कुछ हो रहा है वह तो काम करने की इच्छा, साहसपूर्वक कठिनाइयों पर विजय पाने के उत्साह, और जीतने की इच्छा, का लोप है। राज्याधिकारियों से लेकर क्रमशः नीचे की ओर सभी का यह अस्पष्ट सा विचार है कि हम उन शक्तियों के पंजे में विवश से हैं जिन्हें हम अपने वश मे नहीं ला सकते।

ऐसी मानसिक अवस्था अपने अस्तित्व से ही शक्ति पकड़ रही है। जितनी देर तक यह रहेगी उतनी ही इसकी जड़ें सुदृढ़ होती जायंगी।

मैं इस बात को अस्वीकार नहीं करता कि यह अवस्था चिन्ताजनक नहीं। तथ्य तथ्य ही है और उनका सामना करना ही पड़ेगा। परन्तु उन्हें प्रारम्भिक बिन्दु समझना चाहिए, अन्तिम निर्णय नहीं।

परंपरागत विचार, स्वभाव, रीति-रिवाज़—ये मानसिक प्रतिबंध हैं जो जाति को जकडे हुए हैं। आवश्यकता है मानसिक विद्रोह की, अतीत से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद की; और पूर्व निर्णीत कल्पनाओं से विमुक्त मन द्वारा समस्याओं पर विचार करने की।

साधारण बुद्धिबल

कई पत्र प्रेषकों ने मुझ से यह प्रश्न पूछा है कि 'साधारण बुद्धिबल' से बहुधा क्या अभिप्राय होता है। "साधारण बुद्धिबल से सम्पन्न पुरुष का," वे कहते हैं, "क्या प्रधान लक्षण है?"

इस प्रश्न का उत्तर देना कोई सुगम कार्य नहीं। वस्तुतः, साधा-

रण बुद्धि-बल के अन्तर्गत क्या बात होती है या इस नाम की कोई वस्तु है भी या नहीं, इस विषय में लोगों के विचारों में बहुत सा मतभेद है।

मेरा अपना विचार है कि साधारण बुद्धि-बल नाम का एक गुण मानवयंत्र में अवश्य है जो किसी विषय के विशेष ज्ञान से भिन्न है। मेरा अपना विचार यह भी है कि इस गुण को अपनी परिस्थिति के अनुसार शीघ्रातिशीघ्र व्यवस्था करने की शक्ति भी कह सकते हैं।

इस प्रकार सुगमता और ठीक रीति से कार्यक्रमानुसार अपनी व्यवस्था करने की यह शक्ति ही उस मनुष्य को अन्य लोगों से पृथक् दर्शाती है जिस का साधारण बुद्धि-बल उसकी सारी क्रियाओं में व्याप्त है।

ऐसे मनुष्य में, निस्सन्देह, अन्य विशेषतायें भी होती हैं। वह न तो उद्वेगपूर्ण होता है और न ही भाग्य के भरोसे बैठ कर दुःख भोगने वाला। वह काम करने से पूर्व सोचता है, बात को तोलता है, और फिर शीघ्र ही कोई निश्चय कर लेता है। निश्चय करने के उपरान्त वह निर्णयानुसार काम में हाथ डाल देता है।

मैं साहसपूर्वक यह विचार रखता हूं कि साधारण बुद्धि-बल अभ्यास द्वारा समुन्नत किया जा सकता है। प्रत्येक स्वस्थ और प्रकृतिस्थ पुरुष में किसी न किसी अंश में बुद्धि-बल है। इसको बढ़ाने तथा विस्तीर्ण करने का उपाय है उन दुर्गुणों को दूर करना जो उद्वेग, दुराग्रह तथा सदोष निर्णय की ओर अग्रसर करते हों।

मैं सदैव इसी विषय पर पुनः आता हूं कि, सोचो, खूब सोचो, रचनात्मक ढंग से और तर्कानुसार सोचो; किन्तु सोचो और सदैव सोचते रहो।

सोच कर उपाय करने से असंभव काम भी संभव हो जाते हैं।
'उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः।'

निष्कर्ष

पाठकगण ! लक्ष्मी 'पुरुषोत्तम' की चेरी है। परन्तु पुरुषोत्तम बनना सुकर नहीं। जन्म से कोई भी सर्वगुण-सम्पन्न नहीं होता। केवल सद्गुणों का अभ्यास ही पुरुष को पुरुषोत्तम की पदवी दिला सकता है।

आप ने इस लेखमाला में सफलता के गूढ़ रहस्यों का परिचय पा लिया होगा। प्रयत्न कीजिए, जीवन को सफल बनाइये; लक्ष्मी अवश्य आप के चरण चूमेंगी।

'उद्यमे सिद्धिः प्रतिवसति' उद्यम में सिद्धि का निवास है। आलसी लोग अपने अभीष्ट पदार्थों को पाने में कभी भी सफल नहीं होते।

दुष्प्राप्याणि च वस्तूनि लभ्यन्ते वाञ्छितानि च।
पुरुषैः संशयारूढैरलसैर्न कदाचन ॥

श्री योग वासिष्ठ में गुरु वसिष्ठ जी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जी को कहते हैं कि—आलस्यं यदि न भवेज्जगत्यनर्थः को न स्याद्बहुधनको बहुश्रुतो वा। ५ सर्ग, ३० श्लो०।

यदि इस संसार में आलस्य न होता तो कौन बड़ा धनी अथवा बड़ा विद्वान् न होता। अतः सर्वथा 'आलस्य त्यागो, श्रम से न भागो'।

अपने ध्येय को निश्चित कर लो और तदुपरान्त यह उत्कट इच्छा कि 'कार्यं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयम्' या तो कार्य को सिद्ध करूंगा या फिर शरीर त्याग दूंगा, तुम्हारी शरीर रूपी भट्टी की अग्नि को सदा प्रज्वलित रक्खे।

कौन नहीं जानता कि 'जहा चाह तहा राह' । आत्म विश्वास को समुन्नत करो, सफलता की भावना का सदैव सत्कार करो।

एकाग्रता और रुचि को बढाओ। समयानुसार व्यवस्था करना सीखो। निर्णयात्मक बुद्धि को विकसित करो। असफलताओं और भूलों को उन्नति के मार्ग की सीढिया समझो। निर्भीक बनो और अनिवार्य आपत्तियों तथा कठिनाइयों का डट कर सामना करो। छोटे मोटे कामों को स्वभाव में बदल डालो और अपने मस्तिष्क को नवीन तथा मौलिक विचारों के उत्पादन में लगा दो।

मानव-यन्त्र की प्रत्येक क्रिया को भली भाति समझ लो और तदनन्तर उसका स्वामी बन कर उसे चलाओ। इस तथ्य को कभी मत भूलो कि अपने भाग्य के विधाता तुम स्वय हो। तुम जो बनना चाहो बन सकते हो। आवश्यकता है केवल कर्मवीर बनने की। एक कवि के शब्दों में कर्मवीर पुरुष —

'देख कर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं।
रह भरोसे भाग के दुख भोग पछताते नहीं॥
आज करना है जिसे करते उसे हैं आज ही।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही।
और हस हस के चबा लेते हैं लोहे का चना।
"है कठिन कुछ भी नहीं" उनके है जी मे यह ठना॥
ऊसरों में हैं खिला देते अनूठे वे कमल।
वे लगा देते हैं उकठे काठ मे भी फूल-फल॥
कार्य-थल को वे कभी नहीं पूछते वह है कहा' ?
कर दिखाते हैं असंभव को वही संभव यहा॥

अन्त में मैं यही निवेदन करूगा कि उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्यवरान् निबोधत। 'Awake, arise and stop not till the goal is reached' इत्योम्।